हिंदी चेतना

● डॉ. कोहली विशेषांक ●

हिन्दी प्रचारिणी सभा, कैनेडा की त्रैमासिक पत्रिका
Hindi Chetna quarterly magazine of Hindi Pracharini Sabha, Canada
वर्ष 10, अंक 40, अक्तूबर 2008 ● Year 10, Issue 40, October 2008

Transfer money to any bank in India.*

Sending money home to your loved ones just got more convenient. You can now send money to any bank in India. ICICI Bank has tied up with all major banking networks in India to present this unique money transfer solution. Enjoy attractive exchange rates, low costs and the convenience of ICICI Bank's branches all over Canada.

*Over 100 banks in India.

To learn more, contact us at:

- **icicibank.ca**
- **1-888-ICICI-CA (1-888-424-2422)**
- Visit an **ICICI Bank branch** near you

OUR BRANCHES

Brampton	: 1 Bartley Bull Parkway
Mississauga	: 3024 Hurontario Street
Scarborough	: 5631 Steeles Avenue East
Toronto (Don Valley Pkwy)	: 150 Ferrand Drive, Suite 700
Toronto (Downtown)	: 130 King Street West, Suite 2125
Toronto (Gerrard Street)	: 1404 Gerrard Street East

Money Transfers

ICICI Bank

Terms and conditons apply.

ICICI Bank Canada is not responsible for any charges that may be charged by other institutions facilitating the remittances. Money transfers may be subject to the rules and regulations of the country where the transfer is effected. For more information, visit our website at icicibank.ca or walk into any of our branches. ICICI Bank name and i-man logo contained herein are the property of ICICI Bank Limited.

■ इस अंक में...

स्थायी स्तम्भः

२	आमंत्रण
३	संपादकीय
५	संदेश
५६	पाती
४१–४२	चित्र काव्यशाला

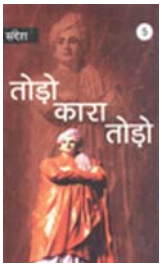

४ मन की बात–डॉ. सुधा ओम ढींगरा
६ कुंभ–डॉ. नरेन्द्र कोहली
११ डॉ. कोहली एक अप्रतिम प्रतिभा–प्रो. आदेश
१२ अभ्यागत–डॉ. निर्मला आदेश
१३ साक्षात्कार–अभिनव शुक्ल
१४ 'तोड़ो कारा तोड़ो' की यात्रा–श्रीनाथ द्विवेदी
१६ शिल्प वैविध्य का व्यंग्यकार–प्रेम जनमेजय
१७ भारतीय संस्कृति के संवादक–रेणु गुप्ता
१९ साक्षात्कार–डॉ. गोयनका
२२ मैं केवल व्यंग्य नहीं लिखता–हरीश नवल
२४ साहित्य के अनुपम मोती–गजेन्द्र सोलंकी
२५ नरेन्द्र कोहली के व्यंग्य पर कुछ नोट्स –सुभाष चन्दर
२७ नरेन्द्र कोहली का व्यंग्य–सामाजिक संदर्भ– डॉ. शशि मिश्र
३० संवाद–डॉ. अवनीजेश अवस्थी
४३ यथार्थवाद की छाया में पुराणों का उपन्यासों में ढलना– डॉ. नरेन्द्र कोहली

आपके हित की बात

अब आप तक घर बैठे हिंदी साहित्य पहुंच सकता है। देखिये !

www.pustak.org

हिंन्दी चेतना को ON LINE पढ़ सकते हैं.....

www.vibhom.com

हमें खेद है कि हिन्दी चेतना के जुलाई अँक में ढेर सारी त्रुटियाँ रह गईं थीं। एक ओर जहाँ कुछ रचनाकारोंने इसे मुद्दा बना कर पत्रिका पर कीचड़ उछालने में कोई कसर नहीं छोड़ी, दूसरी ओर कई रचनाकारों ने अपार सहनशीलता का परिचय दिया। हम इन तमाम रचनाकारों से क्षमा – प्रार्थना करते हुये इस प्रसंग को यहीं विराम देना चाहेंगे। हम इस पत्रिका के स्वरूप को निखारने और त्रुटिमुक्त करने का निरन्तर प्रयास कर रहे हैं और आशा है सुधी पाठकों और लेखकों का सद्भावना पूर्ण सहयोग मिलता रहेगा। संपादक मंडल

चेतना सहायक मंडलः

डैनी काबल
रमेश शौनक
अंकुर टकसाली
डॉ. इला प्रसाद

हिन्दी चेतना वर्ष २००८

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
श्री श्याम त्रिपाठी

सह संपादक
डॉ॰निर्मला आदेश (कैनेडा)
डॉ॰ सुधा ओम ढींगरा (अमेरिका)

संपादकीय मंडल
अभिनव शुक्ल (अमेरिका)
गजेन्द्र सोलंकी (भारत)

प्रबंध संपादक
डॉ. हरीशचन्द्र शर्मा (कैनेडा)
डॉ. ओम ढींगरा (अमेरिका)

मार्ग दर्शक मंडल
सरोज सोनी (कैनेडा)
स्नेह सिंहवी (कैनेडा)
राज महेश्वरी (कैनेडा)
अनुपमा सिंह (कैनेडा)
डॉ. कमल किशोर गोयंका (भारत)
उदित तिवारी (भारत)
विनोद चन्द्र पाण्डेय (भारत)
देवेन्द्र सिंह (अमेरिका)
अनुराधा चंदर (अमेरिका)
डॉ. कृष्ण कुमार (यू.के.)

प्रमुखः विदेश
अनिल शर्मा (थाइलैंड)
ऊषा राजे सक्सेना(यू.के.)
सुरेशचन्द्र शुक्ला (नार्वे)
यासमीन त्रिपाठी (फ्राँस)
राजेश डागा (ओमान)

हिन्दी प्रचारिणी सभा
महाकवि प्रो॰ आदेश (संरक्षक)
श्याम त्रिपाठी (अध्यक्ष)
भगवत शरण श्रीवास्तव (उपाध्यक्ष)
सुरेन्द्र पाठक (मंत्री)
डॉ॰ चन्द्रशेखर त्रिपाठी (उपमंत्री)
श्रीमती सुरेखा त्रिपाठी (कोषाध्यक्ष)
शालीन चन्द्र त्रिपाठी (सदस्य)
सुरभि गोवर्धन (सदस्य)

"हो रामकथा या महासमर
ये दिव्य ग्रंथ सब अभिनव हैं
शब्दों की सूक्ष्म चेतना में
दर्शन विराट के सँभव हैं

साहित्य सृजन चंदन सुगंध
महका जग ज्यों नंदन – वन है
साहित्य मनीषी कोहली जी का
कोटि– कोटि अभिनन्दन है"

कविः गजेन्द्र सोलँकी

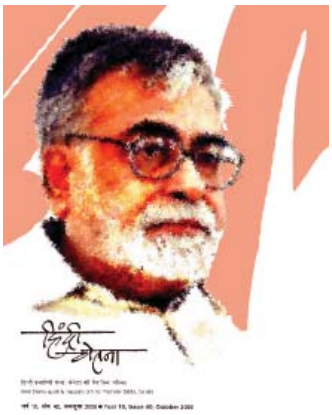

अरविंद नराले

आमंत्रणः

"हिन्दी चेतना" सभी लेखकों का स्वागत करती है कि आप अपनी रचनायें प्रकाशन हेतु हमें भेजें। सम्पादकीय मण्डल की इच्छा है कि "चेतना" साहित्य की एक पूर्ण रूप से संतुलित पत्रिका हो, अर्थात् साहित्य के सभी पक्षों का संतुलन। एक साहित्यिक पत्रिका में आलेख, कविता और कहानियों का उचित संतुलन हो– ना आवश्यक है, ताकि हर वर्ग के पाठक पढ़ने का आनन्द प्राप्त कर सकें। इसीलिए हम सभी लेखकों को आमन्त्रित करते हैं कि हमें अपनी मौलिक रचनाएँ ही भेजें। अगले अँक के लिए अपनी रचनाएँ शीघ्रातिशीघ्र भेज दें। अगर संभव हो तो अपना चित्र भी साथ अवश्य भेजें। रचनाएँ भेजते हुये निम्नलिखित नियमों का ध्यान अवश्य रखें।

विशेष नियमः

१ हिन्दी चेतना, अप्रैल, जुलाई, अक्टूबर, तथा जनवरी में प्रकाशित होगी।

२ प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा।

३ पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर लिखित रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जायेंगी।

४ रचना के स्वीकार व अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा।

५ प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जायेगा।

६ पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

संपर्कः
Hindi Chetna
6 Larksmere Court, Markham, Ontario
L3R 3R1 Phone (905) 475- 7165
Fax: (905) 475-8867
e-mail: hindichetna@yahoo.ca

संपादकीय

'हिन्दी चेतना' एक साहित्यिक पत्रिका है जो सर्वदा रोचक साहित्य पाठकों तक पहुंचाने का प्रयास करती है और समय समय पर हिन्दी के महान लेखकों पर विशेषांक प्रकाशित करती है। इस बार का अंक भारत के प्रख्यात लेखक, कहानीकार, उपन्यासकार, समालोचक ,नाटककार और व्यंग्यकार, डॉ. नरेन्द्र कोहली जी को समर्पित है। 2007 में जब मैं भारत अक्षरम् सम्मेलन में भाग लेने गया था तो एक सत्र में उनके विचार सुनने का अवसर मिला था। भारत से विदेशों की धरती पर बसने के कारण बहुत से साहित्यकारों से वंचित रहा हूं। यह तो हमारा सौभाग्य है कि कभी - कभी डॉ. प्रेम जनमेजय जैसे माननीय साहित्यकार कुछ मोती इधर भी भेज देते हैं। कई बार उनकी 'व्यंग्य यात्रा' में डॉ. कोहली जी के लेखों से भेंट हो जाती है। लेकिन चेतना परिवार की मुख्य सदस्य डॉ. सुधा ओम ढींगरा के सुझाव पर मुझे गर्व से कहना पड़ता है कि हमारा निर्णय ठीक था। आप इस अंक में एक ऐसे श्रद्धेय साहित्यकार से मिलने जा रहे हैं जिसकी लेखिनी में दम है, समाज का ग़म है, सत्यता और निष्ठा है। जो कथनी और करनी में विश्वास रखता है। जो समाज में होता हुआ देखता है वही समाज को देता है। वह जान मिल्टन के कथनानुसार, "साहित्य एक दैवी उत्तरदायित्व है जो ईश्वर उन्हीं लोगों को सौंपता है जो मनुष्य और ईश्वर के नियमों को मानव तक पहुंचाने का प्रयास करते हैं।" डॉ. कोहली जी बहुआयामी प्रतिभा के धनी हैं । आपको विविध क्षेत्रों में पुरस्कार- सम्मान प्राप्त हुये हैं। डॉ. कोहली ने साहित्य की हर विधा पर अपनी कलम चलाई है और उसमें ख्याति भी पायी है। समय की प्रबलता को देखते हुये आपने एक ऐसे साहित्य का सृजन किया जो सत्यं शिवं सुन्दरं के आदर्श पर सही उतरता है। आपके उपन्यासों में जहां ओज है; वहां गौरव गर्जन करता है, जहां करुणा है; वहां अश्रुधारा अपना बाँध तोड़ देती है।

नये रूप में प्रस्तुत की गयी 'रामकथा' और 'महाभारत' अपनी विशिष्टता के लिए सर्वथा अभिनन्दनीय हैं। हमारा भरसक प्रयास रहा है कि हम अधिक से अधिक उनके साहित्य को पाठकों के निकट ले जायें किन्तु समय और स्थानाभाव के कारण हम बहुत सारी सामग्री इस अंक में प्रकाशित न कर सके। डॉ. कोहली ने एक विशाल साहित्य सागर हमें दे डाला । जिसकी कुछ बूंदें ही यहां पर मिल पायेंगी। किन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि वे हिन्दी चेतना के पाठकों के हृदयों में एक नयी उत्सुकता और प्रेरणा की ज्योति जगायेंगी। हमने उनके हस्त लिखित मौलिक लेख, कुछ समकालीन समालोचकों, उनके परम मित्रों व सुपरिचित लेखकों के उनके प्रति (सद्-भाव जो हमें प्राप्त हो सके) आपकी सेवा में प्रस्तुत किए हैं।

हमारा उद्देश्य हिन्दी भाषा, उसके साहित्य का सम्मान और उच्चकोटि के साहित्यकारों को निकट लाना है। इसीलिए हिन्दी चेतना ने गत वर्षों में,स्वर्गीय पद्मश्री विश्वविख्यात श्री यशपाल, डॉ. हरिवंशराय बच्चन, रामायण के विद्वान प्रो. चन्द्रशेखर पाण्डेय, उत्तरी अमेरिका के महाकवि प्रो.हरिशंकर आदेश और मुंशी प्रेमचंद आदि के विशेषांक निकाले हैं ।

डॉ. कोहली की शैली में उनके व्यक्तित्व की छाप है और भाषा में नवीनता , लावण्यता और माधुर्य है। पुरा ग्रन्थों के कथानक को लेकर उन्हें आधुनिकता का चोला पहनाकर उन्होंने समाज को एक नई दिशा देने का अदभुत प्रयास किया है। डॉ. कोहली जी ने अपनी लेखनी से साहित्यिक जगत में एक नई क्रान्ति पैदा की है।

भारतीय दर्शन और पौराणिक ग्रन्थों व मूल्यताओं के प्रति डॉ. कोहली की अपार श्रद्धा व आस्था रही है। वे रामायण और महाभारत को संजीवनी बूटी के समान मान्यता देते हैं और उनमें हर युग का संदेश पाते हैं। उनके लेखों में राजनीति, दर्शन, मनोविज्ञान ,जीवन की समस्याओं की झलक मिलती है । आप एक संवेदनशील लेखक ,पारदर्शी, निष्पक्ष , शुद्ध , सत्य और क्षीर - नीर विवेक को तर्क पूर्वक देते हैं। अपने तर्कों के साथ वे आसानी से समझौता नहीं करते है। अपनी बात स्पष्टता से कहने की क्षमता रखते हैं।

'हिन्दी चेतना' का यह विशेषांक मर्मज्ञ पाठकों तक पहुंचे यह गौरव की बात है। मैं सभी लेखकों का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने अपने व्यस्त जीवन के अमूल्य क्षणों को हिन्दी चेतना के इस विशेषांक को पूर्ण करने में समर्पित किए ।

अंत में:-
निर्मल मन जो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।
(संत तुलसीदास)

श्याम त्रिपाठी (कैनेडा) - मुख्य संपादक

नोट : अब आपको डॉ. कोहली का साहित्य घर बैठे प्राप्त हो सकता है। पता : - www.pustak. org

मन की बात

दोस्तो!

डॉ. नरेन्द्र कोहली के साहित्य को वर्षों से पढ़ रही हूँ। उनके व्यंग्य, कहानियाँ, उपन्यास - (अभ्युदय, महासमर) पढ़ने के उपरान्त कोहली जी का व्यक्तित्व अपनी कल्पना में उतारती थी और चित्रों के साथ जोड़कर उनके भीतर झाँकने का प्रयास करती थी। पति डॉ. ओम ढींगरा ने बहुत बार कहा कि भारत जाती हो तो उन्हें मिल क्यों नहीं लेती। उनके स्वभाव की शुष्कता के बारे में सुना था। मैं भी शीघ्रता से किसी को मिल नहीं सकती, खुल नहीं पाती । स्वभाव से संकोची हूं पर लोगों को लगता है कि बहुत मिलनसार हूं। अत: एक तरह की झिझक बनी रही । वे सियाट्ल (अमेरिका) आये तो मैं भारत में थी। विधि का विधान शायद ऐसा था कि मैं मिल नहीं पाई।

डॉ. कोहली के उपन्यास " तोड़ो कारा तोड़ो" ने प्रसिद्धि की बुलंदियां छुईं। ख्याति की खुश्बू हम तक भी पहुँची । एक मित्र ' तोड़ो कारा तोड़ो' भारत से लेकर आये। हिंदी साहित्य हमें भारत से लाना पड़ता था अब www.pustak.org से घर बैठे मिल जाता है। साहित्यिक गोष्ठियों में इस पर चर्चा करते हुये मैंने कोहली जी को फिर से ढूंढना शुरू किया ....

डॉ. प्रमोद शास्त्री मेरे भाई समान हैं और डॉ. कोहली जी के परम मित्र । उन्होंने कोहली जी के प्रति मेरी श्रद्धा भाँप ली। मुझे बताया कि अगर मैं उनसे बात करूँ तो एक कोमल हृदय, भावुक, मासूम इंसान मिलेगा। जब मैंने 'हिन्दी चेतना' का विशेषांक कोहली जी पर निकालने की इच्छा व्यक्त की तो प्रमोद जी बहुत प्रफुल्लित हुए। उनके उत्साह और प्रेरणा ने मेरी हिम्मत बढ़ाई।

'हिन्दी चेतना' के मुख्य संपादक श्री श्याम त्रिपाठी जी को डॉ.कोहली विशेषांक का प्रस्ताव रखा तो उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया और फोन पर मैंने डॉ. कोहली जी से पहली बार बात की। उन से फोन पर बात करना एक सुखद अनुभव था। स्नेह, आत्मीयता से भरपूर संवाद था।

पाठको! आज डॉ. कोहली विशेषांक आपके हाथों में है; इसे तैयार करते समय जिस डॉ. कोहली से मैं मिली हूँ, आपको भी मिलवाना चाहती हूँ। आपके विचारों एवं अंक पर प्रतिक्रियाओं का इंतज़ार रहेगा .....

सुधा ओम ढींगरा (अमेरिका)

कमला गोइन्का फाउन्डेशन पुरस्कार समारोह की कुछ झलकियां

चित्र में – कमला गोइन्का फाउन्डेशन के सम्मान समरोह में बैठे प्रेम जनमेजय, नरेन्द्र कोहली, एवं श्रीमती सूर्यबाला।

चित्र में – प्रेम जनमेजय 'स्नेहलता गोइन्का व्यंग्य भूषण पुरस्कार – २००८' ग्रहण करते हुये।

चित्र में – डॉ. नरेन्द्र कोहली को उनके व्यंग्य विधा में विशिष्ट योगदान के लिए "गोइन्का व्यंग्य साहित्य सारस्वत सम्मान" से सम्मानित किया गया।

Publishers of:-

PUNJAB KESARI
(Jalandhar, Ludhiana, Palampur, Ambala, Panipat, Hisar & Jammu)
HIND SAMACHAR
(Jalandhar, Ambala & Jammu)
JAG BANI
(Jalandhar & Ludhiana)

PUNJAB KESARI GROUP

CIVIL LINES, JALANDHAR-144 001 (INDIA)
PHONES: 2280104, 2280105, 2280106
FAX: (91)-(181) 2280111 (4 Lines)
e.mail: punjabkesari@vsnl.com
e.mail: punjabkesari@vsnl.net

संदेश

'हिन्दी चेतना' के विषय में जानकारी पाकर बहुत प्रसन्नता हुई। राष्ट्रभाषा हिन्दी की उत्तरी अमरीका में सतत सेवा करने के लिए हार्दिक अभिनंदन

यह जानकर और भी प्रसन्नता हुई कि प्रसिद्ध कहानीकार, उपन्यासकार, व्यंग्यकार डा. नरेन्द्र कोहली पर आप विशेषांक निकाल रहे हैं। हिन्दी साहित्य में डा. नरेन्द्र कोहली का योगदान अतुलनीय है।

'हिन्दी चेतना' परिवार को मेरी हार्दिक बधाई व शुभकामनाएं।

अविनाश चोपड़ा

कुंभ

-नरेन्द्र कोहली

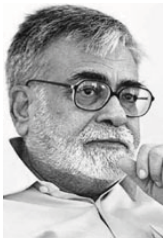

ज्योतिष शास्त्र का मुझे रत्ती भर भी ज्ञान नहीं है। ज्योतिषको विज्ञान मान कर, उसके निष्कर्षों और भविष्यवाणियों पर विश्वास किया जाए या न किया जाए - इस विषय में भी अभी तक मैं अपना कोई मत स्थिर नहीं कर पाया हूं। सर्वथा अविश्वासी भी नहीं हूं। कुछ ज्योतिषियों के प्रति मेरे मन में खासा सम्मान है। इसीलिए ज्योतिष के विषय में सोचता भी हूं और अच्छा ज्योतिषी मिल जाए तो उसके सामने अपनी हथेली भी फैला देता हूं। जन्मकुंडली मांगे तो वह भी प्रस्तुत कर देता हूं ; और उस पर विश्वास भी कर लेता हूं। जब मैं अपने विषय में सोचता हूं तो कुछ ज्योतिषियों के बताए अनुसार स्वयं को वृश्चिक राशि का व्यक्ति नहीं मान पाता हूं। व्यंग्य लेखन में किसी को डंक मारा हो तो मारा हो, पर वैसे.... कैसे कह दूं कि कभी किसी को कटु बात नहीं कही। आज तक तो यही मानता आया हूं कि जो सच लगा, उसे कहने में कभी संकोच नहीं किया। तो जिसके विषय में कटु बात कही जाएगी, चाहे वह सत्य ही क्यों न हो, उसे वह बुरी तो लगेगी ही। उसे लगेगा कि मैंने उसे डंक मार दिया है। उसकी दृष्टि में तो मैं वृश्चिक ही हूंगा।

मैं मानता हूं कि वर्तमान राशियों के अतिरिक्त कुछ राशियां और भी होनी चाहिए थीं। स्वभाव से अनेक लोग गधे और अनेक सूअर भी होते हैं। वरन् अधिकांश तो भैंस ही होते हैं। पर जब मैं अपने विषय में सोचता हूं, अपने स्वभाव, अपनी प्रकृति, अपने स्वधर्म, अपनी प्रतिक्रियाओं, जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न करता हूं, तो ज्योतिषशास्त्र की राशियों में से मेरे मन में अपने प्रतीक के रूप में कुंभ ही उभरता है। मुझे लगता है कि मेरी राशि कुंभ ही होनी चाहिए - मिट्टी का घड़ा। मिट्टी का घड़ा कहीं भी पड़ा रहे, वह तभी तक स्वयं को सुरक्षित अनुभव करेगा, जब तक किसी भी वस्तु से उसके टकराने की स्थिति पैदा न हो। मिट्टी के घड़े से कोई दूसरी वस्तु टकरा जाए, या मिट्टी का घड़ा स्वयं किसी वस्तु से टकरा जाए -- फूटेगा तो घड़ा ही। इसीलिए वह टकराहट से सदा आशंकित रहेगा और टकराने से बचने का प्रयत्न करता रहेगा।

जैसे जैसे मेरी अवस्था बढ़ती जा रही है, मेरी मानसिक स्थिति भी इसी प्रकार की होती जा रही है। अपने शैशव में मैं दृढ़ या हठी बच्चा माना जाता था। वह मैं अब भी हूं - बच्चा नहीं हूं किंतु हठी हूं। किसी प्रकार के मानसिक ताप की स्थिति में मैं यह भूल जाता हूं कि मैं मिट्टी का घड़ा हूं। तब केवल यही स्मरण रहता है कि मैं भट्ठी में से तपकर निकला हूं। कच्चा घड़ा नहीं हूं। पका हुआ हूं। कच्चे घड़े के कारण सोहणी चनाब में डूब गई थी। पक्के घड़े से नदी पार कर जाया करती थी। शायद यही कारण है कि अपनी उग्रता के क्षणों में मैं कुछ लोगों को दबंग सा व्यक्ति लगने लगता हूं। कठोर प्रतिक्रियाओं वाला उग्रवादी। ऐसी स्थिति में मैं वह सत्य भी बोल सकता हूं, या अपने मन की वे भावनाएं भी प्रकट कर सकता हूं, जो भले लोग सभ्य समाज में कभी प्रकट नहीं करते। स्थिति अब भी वही है। जो कुछ मुझे अनुचित लग रहा हो, उसे किसी प्रकार पचा नहीं पाता, घड़े के रूप में कहूं - पके घड़े के रूप में - तो उस जल को सोख नहीं पाता। किसी भी प्रकार से उससे संधि नहीं कर पाता। मिट्टी का घड़ा फूट जाता है। उसके ठीकरों को पीसा जा सकता है - उसका चूर्ण बनाया जा सकता है ; किंतु वह चूर्ण भी पानी में घुलेगा नहीं। ... फिर भी वह घड़ा अपने सहज क्षणों में किसी से टकराना नहीं चाहेगा।

अपनी स्थिति भी मुझे कुछ ऐसी ही लगती है - जिस बात के प्रति मेरे मन में विरोध है, वह रहेगा ही। वह इतना मुखर होता है कि उसे छिपाना संभव नहीं होता और न ही उसे किसी प्रकार मधुवेष्ठित किया जा सकता है। इसलिए असमर्थ विरोध की स्थिति से बचने के लिए उसको स्वीकार करने के स्थान पर, उससे परे हट जाना मेरे लिए अधिक स्वाभाविक है। टकरा कर अपना विरोध प्रकट करने से परे हटकर - संपर्क तोड़ कर - अपना विरोध प्रकट करना मेरे लिए अधिक अनुकूल है। जब मानसिक ताप बढ़ जाए और मैं स्वयं को कुंभ के रूप में देखना भूल जाऊं वह मेरे लिए आपात् स्थिति होती है। आपात् स्थिति में टकराना भी पड़ता है, कटु बातें भी कहनी पड़ती हैं, लिखनी भी पड़ती हैं ; पर वह तो दूर से होता है। घड़ा टूटता तो शारीरिक टकराहट से है। शारीरिक धरातल पर संघर्ष या शारीरिक हिंसा की स्थिति में सहज और स्थिर रह पाना, कदाचित् मेरे लिए संभव नहीं है।

अपने जीवन को जहां तक मैं स्मरण करता हूं, मारपीट की प्रवृत्ति मुझमें नहीं थी। न पिट सकने की, न पीट सकने की। जीवन में कभी अपनी इच्छा से मारपीट की है, तो केवल अपने बच्चों से - वह भी तब, जब वे बहुत छोटे थे और तर्क नहीं समझ पाते थे; या इतने हठी हो जाते थे कि मेरा धैर्य चुक जाता था। ... हां ! याद आया। एक बार अपने मीठे नीम के वृक्ष से टहनियां तोड़कर उसे नष्ट करते देखकर भी उस व्यक्ति को मैंने एक थप्पड़ लगा दिया था। वह थप्पड़ शायद इसलिए लगा सका था कि वह व्यक्ति शारीरिक रूप में मुझ से स्पष्टत: दुर्बल था। दो एक बार अपने किसी छोटे नौकर के साथ भी चपतबाजी की है। पर वह सब मारपीट या शारीरिक हिंसा नहीं थी।

बहुत पहले की एक घटना याद आती है। तब शायद मैं चौथी या पांचवीं कक्षा में पढ़ता था और हम -लोग जमशेदपुर में 12, स्टॉकिंग रोड पर अपने चाचा जी के घर में रहते थे। आपस में मिलकर खेलने वाले बड़े लड़कों में किसी बात को लेकर झगड़ा हो गया था। वे कुछ दूरी से एक दूसरे पर पत्थर चला रहे थे ; और मैं एक किनारे पर खड़ा होकर सोच रहा था कि वे लोग एक दूसरे को पत्थर मारते हुए क्या यह नहीं सोचते कि जिसको पत्थर लगेगा, उसका सिर फूट जाएगा, आंख फूट जाएगी। .... किन्तु उनमें से किसी को पत्थर नहीं लगा,किसी बेतुके निशाने बाज का एक पत्थर भटककर मुझे ही आ लगा। मेरे सिर से खून बह निकला। संयोग से पत्थर मारने वाला लड़का टिंकू - मेरा पड़ौसी था और अवस्था में भी मुझ से कहीं बड़ा था। मेरा उससे कोई झगड़ा भी नहीं था और उसने मेरा सिर फोड़ना चाहा भी नहीं था।

इस अघटनीय के कारण झगड़ा बंद हो गया। सब तितर

बितर हो गए। टिंकू के बड़े भाई मुझे अपने घर ले गए। घाव धोया और उस पर चूना लगा कर रक्त का बहना बंद कर दिया। यह घट ना मुझे स्मरण है ; किन्तु उस चोट का प्रमाण न मेरे माथे पर है, न मेरे हृदय पर। उस घटना में मेरे शरीर को चोट अवश्य लगी थी, खून भी बहा था, पर मेरा अपमान नहीं हुआ था, न ही मेरा स्वाभिमान आहत हुआ था।

उससे भी साल छह महीने पहले एक घटना घटी थी। मेरे एक पड़ौसी लड़के से मेरी कुछ कहा सुनी हो गई थी। झगड़ा किस बात को लेकर हुआ, यह स्मरण नहीं है ; पर शायद मामला कुछ कंचों का था। राम बाबू (यह उस लड़के का नाम था, वैसे वह बाबू नहीं था) मुझसे कुछ बड़ा भी था और सबल भी। पर शायद अपनी मानसिक दुर्बलता अथवा मेरे बड़े भाई कुलभूषण के शारीरिक बल से डर कर वह अपने घर लौट गया। उसके पिता वैसे तो टिस्को के किसी विभाग में क्लर्क थे। वे टी. आर. टाईप क्वार्टर में रहते थे, इसलिए कोई बड़े अधिकारी नहीं हो सकते थे। इसीलिए वे धूप और अगरबत्ती बेचने का स्वतंत्र व्यापार भी करते थे। उसी व्यावसायिक संदर्भ में उनका मेरे पिता जी से भी संपर्क था। पिताजी की दुकान तो फलों की थी ; किंतु उन दिनों जमशेदपुर में धूप और अगरबत्ती भी फलों की दुकान पर ही बिकती थी। कारण शायद यह था कि लोग पूजा के लिए नारियल, केले और फल , जिस दुकान से खरीदते थे, वहीं अगरबत्ती मिल जाने से उनको सुविधा होती थी। उसी संदर्भ में रामबाबू के पिता साप्ताहिक छुट्टी वाले दिन एक रिक्शे पर सामान लाद कर बाजार में जाकर विभिन्न दुकानों पर अपना माल बेचा करते थे। उनकी एक टांग दूषित थी, बिना लाठी के चल नहीं सकते थे। अपंग होने के कारण उन्हें भला आदमी माना जाता था।

उस झगड़े के पश्चात् रामबाबू जब अपने पिता के साथ अपने घर से बाहर निकला, तो मैं भी डरा -घबराया नहीं। पहली बात तो यही थी कि रामबाबू से मेरी कोई मारपीट नहीं हुई थी, दूसरे वे हमारे पड़ौसी थे, उसके पिता के मेरे पिता से व्यावसायिक संबंध थे, वे शारीरिक रूप से भी असमर्थ थे। मेरा ध्यान इस ओर एक दम नहीं गया कि जिस छड़ी के सहारे वे चलते थे, उसका कोई और उपयोग भी हो सकता है। निकट आने पर रामबाबू के पिता ने बिना कुछ कहे सुने, मुझ पर छड़ी चला दी ; और इससे पहले कि मैं स्वयं को बचाता या कुछ समझता बूझता, मुझे तीन चार छड़ियां लग चुकी थीं। मन में तो आया कि ईंट उठा कर दे मारूं उस लंगड़े को, पर मुझसे न ईंट उठाई गई , न चलाई गई। मेरी हिंसा सदा मानसिक ही रही है, शारीरिक धरातल पर वह कभी उतरी ही नहीं। मन और भुजाएं ऐंठ कर रह जाती हैं, पर कितना भी आक्रोश होने पर, मैं किसी को थप्पड़ या घूंसा नहीं लगा पाया। इसीलिए तब भी खड़ा खड़ा दांत पीसता हुआ, रामबाबू और उसके लंगड़े बाप को कोसता हुआ, ऐंठता खड़ा रहा। इसके पहले कि मेरा बाल -मन कुछ सोच पाता, रामबाबू का बाप, अपनी छड़ी हिलाता हुआ एक विजयी योद्धा के समान हमारे घर जा पहुंचा।

देश के विभाजन के पश्चात् हम लोग स्यालकोट से जमशेदपुर आ गए थे और अपने चाचाजी के घर उनके परिवार के साथ ही रह रहे थे। उस समय घर पर पापाजी (मेरे पिता जी) अथवा चाचा जी तो थे नहीं। भाभी जी (मेरी मां) घर के भीतर कहीं रही होंगी। रामबाबू के बाप से मिलने वाली मेरी सबसे बड़ी चचेरी बहन थीं। मजे की बात है कि बजाय इसके कि हमारे परिवार की ओर से मेरे पीटे जाने का विरोध किया जाता, उलट रामबाबू के लंगड़े बाप की मेरे विरुद्ध शिकायत सुनी गई और उसे आश्वस्त किया गया कि भविष्य में मैं कभी उसके बेटे को परेशान नहीं करूंगा।

मैं आज तक समझ नहीं पाया कि उस बड़े संयुक्त परिवार में, मैं इतना महत्वहीन था, या तब पड़ौसियों द्वारा बच्चों को पीटा जाना अत्यंत साधारण बात थी, या हमारा परिवार इतना सहिष्णु और शांतिप्रिय था कि उसके बच्चों को कोई भी पीट सकता था। पर उस घटना की चोट और अपमान के दाग, आज भी मेरे हृदय पर हैं। उस घटना के लिए मेरा मन न आज तक रामबाबू के लंगड़े बाप को क्षमा कर पाया है, न अपने परिवार के वयस्क सदस्यों को ।

ऐसी ही छोटी- मोटी घटनाएं और भी अनेक हैं, जिनसे यह लगता रहा कि माता पिता और बड़े भाई बहनों के होते हुए भी मैं ऐसी स्थितियों में सदा असुरक्षित ही रहा हूं। अवस्था बढ़ने के साथ साथ अपने सामर्थ्य पर जो आत्मबल विकसित हुआ, वह हुआ - पर असुरक्षा की भावना, आज भी शायद बहुत गहरे कहीं मेरे मन में गड़ी हुई है। अब तो सामाजिक, प्रशासनिक और राजनीतिक परिस्थितियां , दिन प्रतिदिन उस असुरक्षा बोध को बल ही दे रही हैं।

कुछ और बड़े होने पर एक और इसी प्रकार की घटना याद आती है। ... दस - पांच लड़कों के एक दल से हमारा झगड़ा हो गया। मैं दल में था अवश्य, पर न मैंने किसी को मारा और न किसी ने मुझे मारा। मैं पीछे पीछे रहा हूंगा, इसीलिए किसी का हाथ मुझ तक नहीं पहुंचा ; और मैं किसी को मारने से पहले सोचता हूं कि यदि मैंने उसे मारा और उसे अधिक चोट लग गई, तो बेचारे को कष्ट होगा और जोर से न मारा तो वह मुझे पीट कर रख देगा। इसी द्वंद्व में एक बार मेरी कप्तानी छूट गई थी। हुआ यूं कि उन दिनों बाबूराव- भगवानदास की मारपीट वाली फिल्में देखने का दौर चल रहा था- कदमा के फोकटिया फिल्म वाले मैदान में। उसीके प्रभाव में हम चार पांच लड़कों का एक लड़ाकू दल संगठित हुआ। प्रश्न उठा कप्तानी का। कुश्ती में नज्जू ने मुझे पटक दिया, इसलिए वह कुश्ती का कप्तान हो गया। दूसरा लड़का (नज्जू का मौसेरा भाई - जो उन दिनों उनके घर आया हुआ था। नाम अब याद नहीं है।) मुक्केबाजी की कप्तानी का दावेदार था। हम दोनों का मैच हुआ। मैंने उसके कंधे, छाती और पीठ पर तीन-चार मुक्के झाड़ दिए। पर उसने पहला अवसर पाते ही मेरे जबड़े पर ऐसा मुक्का रसीद किया कि मेरा सिर घूम गया। परिणामत: मुक्केबाजी का कप्तान वह हुआ।

बचपन की अनेक ऐसी घटनाएं याद आती हैं, जब कहीं मारपीट हुई अथवा मारपीट की आशंका हुई , और मैं न उसमें भाग ले सका और न उससे दूर रह सका। मेरे हाथ नहीं चलते। हिंसा, अभद्रता, पागलपन या शराब के नशे में किसी को देख कर , मैं स्थिर नहीं रह पाता ; और मन होता है कि वहां से कहीं दूर भाग जाऊं। मैं यह भी नहीं मान सकता कि मेरे मन में किसी के लिए घृणा, शत्रुता या विरोध नहीं है - मैं सब से प्रेम करता हूं

या बहुत अहिंसावादी हूं। मेरे भीतर असीम आक्रोश है, विरोध है, घृणा है, द्वेष है, ईर्ष्या है - और सबसे बढ़कर मानसिक हिंसा है। अपनी कल्पना में मैं किसी भी विश्वयुद्ध से अधिक संख्या में नरसंहार कर डालता हूं। पर यह भी विचित्र स्थिति है कि अपने आपको शारीरिक जोखम में डाल कर , मैं विरोध नहीं करना चाहता। मिट्टी का घड़ा हूं - सदा ही टूट जाने का भय सताता रहता है।

संकट और जोखम की बात सोचता हूं, तो भी स्वयं को ठीक से समझ नहीं पाता। या यही समझता हूं कि मानसिक ताप के क्षणों में मुझे यह स्मरण ही नहीं रहता कि मैं मिट्टी का घड़ा हूं, यही स्मरण रह जाता है कि भट्ठी से तपकर निकला हूं, पूरी तरह से पका हुआ हूं - मुझे जल घोल नहीं सकता, आग जला नहीं सकती ... एक ओर कुछ ऐसी घटनाएं हैं कि लोगों ने मुझे दुस्साहसी घोषित किया और दूसरी ओर मैं स्वयं को अत्यंत हीन कोटि का भीरु व्यक्ति पाता हूं ...

अपने शैशव में , जब संसार का अधिक ज्ञान नहीं था, मैंने न द्वंद्व जाना, न भय। मुझे स्मरण है कि जब भाषाई सीमाओं के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के लिए आयोग बिहार में आया था, मैं जमशेदपुर के के. एम. पी. एम. हाई स्कूल की नवीं या दसवीं कक्षा में पढ़ता था। बंगाल और बिहार की सीमा को लेकर वहां काफी दंगा भी हुआ था और छात्रों की उसमें प्रमुख भूमिका थी। जिन कमरों में बैठ कर हम वर्षों से पढ़ते आए थे ; और जिनकी अल्मारियों में सिवाय कॉपी, किताब, चॉक और डस्टर के कभी और कुछ होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, उन्हीं में कब लोहे की छड़ें आ विराजीं - यह तो मुझे पता ही नहीं था। जब भरी पूरी कक्षा में अध्यापक की उपस्थिति में लड़के आकर वे छड़ें निकाल कर ले गए, तब जाना कि कुछ महत्वपूर्ण घटित हो रहा है। स्कूल के बाहर और नगर के विभिन्न स्थानों पर स्कूली लड़कों के सशस्त्र झगड़े हुए थे (उस समय शस्त्र का अर्थ लाठी डंडा, लोहे की शलाका, और कोई छुरी चाकू ही हुआ करता था)। कह नहीं सकता कि उन झगड़ों का सीमा आयोग पर कितना प्रभाव पड़ा था, पर यह मालूम है कि हिंसा बहुत प्रकट होकर ही नहीं, अत्यंत गौरवान्वित होकर सामने आई थी। उन्हीं दिनों में पटना में पुलिस द्वारा गोली चलाई गई थी और कुछ छात्र मारे गए थे। बिहार के सारे स्कूल कॉलेज बंद हो गए थे ... मेरा मन पुलिस की गोलियों का समर्थन नहीं कर पाया था तो छात्रों की गुंडागर्दी से भी सहमत नहीं हो पाया था। मैं तब भी नहीं समझ पाया था और आज भी समझ नहीं पाता हूं कि 'छात्र' होने से क्या वह कोई विशिष्ट व्यक्ति हो जाता है। और क्या विशिष्ट व्यक्ति के लिए शिष्ट आचरण, नियम, कानून, विधि- विधान की कोई मर्यादा नहीं होती? छात्र होने भर से किसी को पथराव करने, बसें जलाने, दुकानें लूटने, गाड़ी की रोधक श्रृंखला खींच कर कहीं भी गाड़ी रोकने, हत्याएं करने, स्त्रियों को अपमानित करनेका अधिकार मिल जाता है ? मेरा मन, किसी भी वर्ग को विशिष्ट वर्ग मानकर अमर्यादित व्यवहार की अनुमति नहीं देता। ... उन दिनों मेरे मन में यही बवंडर था। क्या कोई जाना माना गुंडा छात्रों का नेता बन सकता है और नेता कहलाने मात्र से क्या वह सम्माननीय और विशिष्ट व्यक्ति बन जाता है ?

मैं कंधे पर अपना बस्ता लटकाए हुए, पढ़ने के लिए स्कूल पहुंचा तो पता चला कि स्कूल में हड़ताल है। जब सारे बिहार के स्कूल कॉलेजों में हड़ताल थी तो हमारा ही स्कूल अपवाद कैसे हो सकता था। स्कूल के फाटक पर हड़ताली नेता खड़े थे और किसी को अंदर जाने नहीं दे रहे थे। वास्तविकता यह थी कि कोई छात्र स्कूल के भीतर जाने का प्रयत्न ही नहीं कर रहा था। उन्हीं हड़ताली नेताओं में प्रमुख था - इकबाल। वह मेरी ही कक्षा में पढ़ता था, पर अवस्था में मुझ से तीन चार वर्ष अवश्य बड़ा था। कई बार फेल हो चुका था। उसकी प्रसिद्धि तीन कारणों से थी। एक तो उसके पास बहुत चमकदार साइकिल थी, जिस में शीशों, कृत्रिम फूल पत्तियों तथा झुनझुनों और घंटियों की भरमार थी। दूसरे, वह अश्लील बातों, चुट-कुलों और गालियों के लिए प्रसिद्ध था। तीसरी बात सब से अधिक महत्वपूर्ण थी। उन दिनों जमशेदपुर के सबसे बड़े लड़कियों के स्कूल की एक एन. सी. सी. की छात्रा की धूम थी। उस छोटे नगर में तब वह साइकिल चलाने में झांसी की रानी के समान प्रसिद्ध थी। अपने साहस और दबंगपन के कारण(और अपने सांवले वर्ण के कारण) उसने 'काली माई' की संज्ञा अर्जित की थी।

इकबाल ने कभी उस लड़की से छेड़ छाड़ की थी और 'काली माई' ने अपनी चप्पल उतार कर इकबाल की धुनाई की थी। एक लड़की से पिटना इकबाल सहन नहीं कर पाया था, इसलिए उसने अपने कुछ मित्रों की सहायता से सड़क पर साइकिल पर जाती हुई 'काली माई' को साइकिल से गिरा कर अपने अपमान का प्रतिशोध लिया था। ... वही बदनाम इकबाल यहां खड़ा नेतागिरी कर रहा था। मेरे मन ने तत्काल निर्णय किया कि मुझे ऐसी हड़ताल का साथ नहीं देना है। .... वे लोग फाटक पर खड़े थे और मैं उनके देखते देखते, स्कूल की कुल तीन फीट ऊंची दीवार पर चढ़, कूद कर स्कूल के भीतर चला गया। तभी घंटी बजी थी और सारे अध्यापक ,हाथों में उपस्थिति का रजिस्टर थामे, स्टाफरूम से निकल कर, स्कूल के मैदान में आ गए थे। वे भी जानते थे कि स्कूल में हड़ताल थी और कोई भी छात्र कक्षा में पढ़ने के लिए नहीं आएगा। मैं अपनी धुन में चलता हुआ अपने क्लास टीचर हक़ साहब के पास जा खड़ा हुआ।

वे मुझे देख कर हक्के बक्के रह गए, " अरे नरिन्दर तुम ! तुम कैसे आ गए ?"

जबतक कि मैं कोई विशेष उत्तर देता, पिछले सप्ताह भर के दंगों में ख्यातिप्राप्त छात्र नेता नरेन्द्रकुमार सिंह आ गया।

" नरेन्द्र जी ! सारे बिहार के छात्र हड़ताल पर हैं। आप हमसे पृथक् नहीं हैं। आप बाहर आ जाइए।"

नरेन्द्रकुमार सिंह से मेरा कोई विरोध नहीं था। वह इकबाल के समान अपनी दुश्चरित्रता के लिए बदनाम नहीं था। न वह फेल हुआ था और न ही लड़कियों से छेड़छाड़ करने के संदर्भ में कभी उसका नाम लिया जाता था। ... हां ! उसके साहस के लिए मेरे मन में कुछ सम्मान भी था।

" मैं जरा ...।"

"हां ! ठीक है। आइए।"

मैं उसके साथ बाहर चला आया। हक़ साहब भी कुछ आश्वस्त हुए। मैं स्कूल के फाटक तक अपने नेता को यही समझाता आया कि इस प्रकार के आंदोलनों का नेतृत्व इकबाल

जैसे बदमाश लड़कों के हाथ में नहीं होना चाहिए। उससे पवित्र आंदोलन भी बदनाम हो जाते हैं। ... वह मुझ से सहमत होता रहा, पर इकबाल और उसके साथियों को न उसने इस आंदोलन से बाहर किया और न ही स्वयं उन से पृथक् हुआ और तब से आज तक मैं इस प्रवृत्ति को बढ़ते हुए ही देखता आया हूं। छात्र आंदोलन और सारे छात्र संघ ही नहीं,(कुछ सूक्ष्म अपवादों को छोड़ कर) सारा राजनीतिक नेतृत्व ही समाज विरोधी तत्वों के हाथ में चला गया है। छात्र संघ के अधिकारी होने का अर्थ है कि छुरी चाकू, बंदूक पिस्तौल का खिलाड़ी तो वह है ही पैसों का गबन, कैंटीन को लूटना और लड़कियों के लिए सड़कों पर गैंगस्टर के समान युद्ध करने में भी दक्ष होना।

स्कूल खुलने पर मेरे अध्यापकों ने ही बताया था कि सारे बिहार में हुई छात्रों की उस विराट हड़ताल का विरोध मुझे नहीं करना चाहिए था। यह बड़े जोखम का काम था। हड़ताली लड़के मेरी पिटाई भी कर सकते थे। मेरा सिर फूट सकता था। मेरे प्राण जा सकते थे ; और उन परिस्थितियों में कोई पुलिस वाला मेरी हत्या की रपट भी नहीं लिखता। उलटे यह प्रसिद्ध कर दिया जाता कि मैं कहीं आग लगाता या दंगा करता हुआ मारा गया हूं। ...और मैं सोचता रह गया कि जो कुछ मैंने किया था, इसमें साहस या जोखम की क्या बात थी ; और मैंने हड़ताल का विरोध भी कहां किया था ? ... मैंने तो केवल गुंडों के विरुद्ध अपनी असहमति दर्ज कराई थी।

इस घटना के बहुत बाद, जब दिल्ली के मोतीलाल नेहरू कॉलेज में पढ़ाते हुए मुझे कई वर्ष हो गए थे, एक दूसरी घटना घटी थी।

उन दिनों मैं अपने कॉलेज के भूतपूर्व छात्रों के संघ का परामर्शदाता था। छात्रसंघ का परामर्शदाता मैं कभी नहीं रहा। छात्रसंघ के नेताओं को अपनी बात समझाने का साहस मैं कभी नहीं कर सका और उनकी बात मान कर कॉलेज से उन्हें सुरापान के लिए गोवा जाने का खर्च दिलवाने की उदारता भी मुझ में कभी नहीं आई। पर भूतपूर्व छात्रों की बात और थी। यह संघ नया- नया संगठित हुआ था और मेरे कुछ प्रिय छात्रों ने चाहा था कि मैं उनका परामर्शदाता बन जाऊं। इस अनुरोध में मुझे अपने प्रति उनका स्नेह और सम्मान दिखाई दिया। अपने पुराने छात्रों से मिलना मुझे वैसे भी उतना ही अच्छा लगता है, जितना अपनी वृद्धावस्था में अपनी युवावस्था से मिलना।

हम समारोह की तैयारी कर रहे थे कि अचानक भगदड़ मच गई । जिसे देखो , वह बाहर की ओर भागा जा रहा था। मैं भी स्वयं को रोक नहीं सका और कॉलेज के फाटक से बाहर आ गया। वहां जो कुछ मैंने देखा, वह अपने जीवन में पहले कभी नहीं देखा था और फिर कभी देखने की इच्छा भी नहीं है।

ढाई तीन सौ लड़कों की भीड़ में घिरे हुए दो लड़के परस्पर गुंथे हुए थे। एक बड़ा सा चाकू था और एक लोहे का सरिया, जिसे इस समय दोनों थामे हुए थे। एक ने इसलिए थाम रखा था कि वह दूसरे को मारना चाहता था और दूसरे ने इसलिए थाम रखा था क्योंकि वह अपने आप को बचाना चाहता था। बचाव पक्ष के लड़के को तीन घाव लगे हुए थे। एक सिर पर, ताकि वह मर सके, दूसरा भुजा पर , ताकि वह लड़ न सके और तीसरा जांघ पर ताकि वह भाग न सके। वे दोनों लड़के हमारे ही कॉलेज के थे। एक गौरवान्वित गुंडा था। दूसरा कॉलेज का प्रसिद्ध खिलाड़ी था और लड़कियों में बहुत लोकप्रिय था। क्षण भर में समझ में आ गया कि क्या खेल चल रहा है। दोनों के साथी भी भीड़ में थे ; किंतु गुंडे छात्र के पक्ष में कॉलेज के छात्र संघ का अध्यक्ष नौ इंच फल का चाकू खोले, गंदी गालियां देकर अपने शत्रुओं को ललकार रहा था और उनकी माताओं तथा बहनों को विशेष उपाधियों से अलंकृत कर रहा था। मैं देख रहा था कि उसके आतंक से घायल खिलाड़ी के पक्ष के लड़के सामने नहीं आ रहे थे। वे तो अपने ही प्राणों को बचाने के लिए इधर उधर भागे फिर रहे थे।

मेरा मन तपने लगा था। कुंभ फिर से एक बार भट्ठी में पहुंच गया था। वे तीनों किसी न किसी रूप में मेरे छात्र थे और मेरे ही सामने अपने एक साथी की हत्या करने जा रहे थे। मैं भीड़ को चीरता हुआ भीतर घुस गया। पहले तो छात्र संघ के अध्यक्ष को डांटा कि वह अपनी बकवास बंद करे और चाकू समेटकर जेब में डाले। देखने वालों को आश्चर्य हुआ कि उसने मेरे आदेश का पालन किया। मेरे तपे मन के लिए वह अत्यंत स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। एक छात्र को अध्यापक के आदेश का पालन करना ही चाहिए था। तब मैंने चाकू वाले का हाथ थामा, "खैराती ! छोड़।" ... और सहसा खैराती अपने चाकू और सरिए के साथ भीड़ को डराता हुआ, वहां से भाग गया, ताकि कोई उसे पकड़ने का साहस न करे। खिलाड़ी के मित्र भीड़ से निकल आए और वे उसे थाने और अस्पताल ले जाने का प्रबंध करने लगे।

भीड़ छंट गई। मैं भी कॉलेज के भीतर आ गया। मेरी कमीज की आस्तीन खिलाड़ी - विनोद सेन - के खून से तर हो गई थी। मैंने उसे लपेट लिया। पर मेरा मन समारोह से उखड़ गया था। इस घटना का पहला प्रभाव अवसाद का था। यह सब क्यों होता है। लोगों ने मुझे बता दिया कि खिलाड़ी और अध्यक्ष में किसी लड़की के आधिपत्य को ले कर झगड़ा चल रहा था। आज अवसर देखकर अध्यक्ष ने खैराती को बुला लिया था और उनकी योजना खिलाड़ी को समाप्त कर देने की थी। वह तो बीच में मैं आ पड़ा। ...

संध्या समय मैं अस्पताल गया, विनोद सेन का हालचाल देखने। वहां उसकी मां रो धो रही थी और हमारे कॉलेज के क्रीड़ा अध्यापक को भला बुरा कह रही थी कि सारा दोष उसका ही है। वह चाहता तो इस दुर्घटना को रोक सकता था। फिर पुलिस वाले भी उनका साथ दे रहे थे। अभी तक विनोद का बयान भी किसी ने नहीं लिया था और न ही इस घटना की रिपोर्ट लिखी गई थी। मेरे लिए ये बातें आश्चर्यजनक थीं। थाने वालों ने रिपोर्ट नहीं लिखी, न सही ; किन्तु अस्पताल वाले तो इसे मेडिको लीगल केस मानेंगे। वे तो रपट लिखे बिना रोगी को हाथ भी नहीं लगाते।

मेरा मन हो रहा था, मैं यहां से भाग जाऊं और किसी ऐसे स्थान पर चला जाऊं, जहां ऐसे लड़के नहीं होते, ऐसी पुलिस नहीं होती, ऐसा समाज नहीं होता। ... विनोद सेन खासी पीड़ा में था ; किंतु उसने मुस्करा कर मेरा धन्यवाद किया कि मैं बीच में पड़ा तो उसके प्राण बच गए और लोग तो कायर और डरपोक हैं। मेरे जैसा साहसी आदमी उसने कभी देखा ही नहीं। वह आजीवन मेरा कृतज्ञ रहेगा।

मन पर भारी बोझ लिए मैं घर आया। अगले दिन कॉलेज पहुंचा तो यह सूचना काफी फैल चुकी थी। जिसने सुना, उसने मुझे मेरी मूर्खता के लिए डांटा। "एक चाकू तेरे पेट में घुसेड़ देता, तो ही तुझे अक्ल आती। ऐसे झगड़ों में कोई शरीफ आदमी कभी पड़ता है।" अर्थात् नहीं पड़ता।

एक और मित्र ने कहा, " अब पुलिस तेरा बयान लेने आएगी, तो यह मत कह देना कि तुमने यह सब देखा है।"

"क्यों"? मैंने चकित होकर पूछा, " मैंने सचमुच सब कुछ देखा है।" देखा है तो देखता रह। पुलिस तुझे अलग परेशान करेगी और वह खैराती और महिन्दर अलग तेरी जान लेने पर उतारू हो जाएंगे।

उस दिन जब मैं घर लौटा तो कुंभ भट्ठी से पूरी तरह बाहर आ चुका था और ठंडा हो गया था। मैं बुरी तरह डरा हुआ था। पुलिस वाले मेरा बयान लेने तो आएंगे ही। मेरा ही बयान नहीं लेंगे तो किस का लेंगे। फिर ये लड़के आएंगे। मैं जानता हूं कि वे लोग बड़ी शालीनता से हाथ जोड़कर मुझे समझाएंगे कि मैंने कुछ नहीं देखा। पर मैं झूठ नहीं बोल सकता था। मुझे सच्चा बयान देना होगा और उन लड़कों - गुंडों - की शत्रुता झेलनी पड़ेगी। तीन दिनों तक मेरी बुरी हालत रही। घर की घंटी बजती या कपाट खटकता तो मुझे यही लगता, कि वे लड़के चाकू और सरिया लेकर मुझे मारने आ गए हैं। मैं अपने को कोसता रहा कि मैं जब इतना भीरु व्यक्ति हूं तो अन्य लोगों के समान ऐसी घटनाओं से दूर ही क्यों नहीं रहता ? और यदि बीच में पड़ कर परमवीर चक्र लेने की साध पालता हूं तो भयभीत मूषक के समान कांपता क्यों रहता हूं ? उस पर तुर्रा यह कि झूठ नहीं बोल सकता। किंतु मेरे पास दोनों में से किसी प्रश्न का उत्तर नहीं था। एक काम भट्ठी में तपते हुए कुंभ का था और दूसरा पक कर ठंडे हो गए मिट्टी के घड़े का। वे न स्वयं को बदल सकते थे और न अपने स्वधर्म को छोड़ सकते थे।

मेरे मन में मुनि सुतीक्ष्ण जागे, जो राम के पक्षधर होते हुए भी , उनसे स्नेह करते हुए भी , उनकी चरण रज लेने को आतुर रहते हुए भी, राक्षसों के भय से उनको अपने आश्रम में नहीं ठहराते। ... किसी भी युग का बुद्धिजीवी वस्तुत: इसी नियति के साथ जन्म लेता है कि वह आजीवन इस द्वंद्व से पीड़ित रहेगा। तपेगा तो स्वयं को पीतल की गागर समझने लगेगा, जो टूट नहीं सकती और सहज होगा तो स्वयं को मिट्टी का घड़ा मानेगा, जो टकराहट से ही नहीं किसी की कठोर छुवन से भी टूट सकता है।

तीन दिनों के बाद कॉलेज में ही सूचना मिली कि पुलिस मेरा बयान लेने कभी नहीं आएगी, क्योंकि खैराती और उसके साथियों ने प्रात: ही मोतीबाग के थाने में रुपए पहुंचा दिए थे कि वे आज यह कृत्य करने जा रहे हैं। यही कारण है, कि उस दिन कॉलेज के फाटक पर वह सिपाही भी नहीं था, जो प्रतिदिन वहां बैठ कर चाय पिया करता था। पुलिस के अनुसार यह घटना घटी ही नहीं थी, तो वे बयान किस बात का लेते।

मुझे दूरदर्शन में देखा हुआ पंजाबी का एक कार्यक्रम स्मरण हो आता है। उसमें पंजाब पुलिस का एक सिपाही लंदन में हुई पुलिस की एक अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार लेकर अपने गांव लौटता है । उसका एक मित्र पूछता है कि यह संभव कैसे हो गया।

सिपाही उसे बताता है कि वहां इंग्लैंड की पुलिस ने यह दावा किया कि अपराध होने के पंद्रह मिनट के भीतर वे पता लगा लेते हैं कि अपराधी कौन है। अमरीकी पुलिस ने कहा कि वे अपराध के आधे घंटे में बता सकते हैं कि अपराध करने वाला कौन है। ऐसे ही चीन और जापान की पुलिस ने एक और डेढ़ घंटे का समय बताया।

"तो तूने क्या किया ?"

"मुझे क्या करना था।" सिपाही हंसा," पंजाब पुलिस को तो सप्ताह भर पहले ही पता होता है कि कहां कौन सा अपराध होने जा रहा है और अपराधी कौन होगा। बस फिर क्या था। कप तो हमें ही मिलना था न।"

और मैं सोचता हूं कि ऐसी पुलिस से टकरा कर तो मिट्टी का घड़ा ही क्या, पीतल की गागर भी टूट जाएगी।

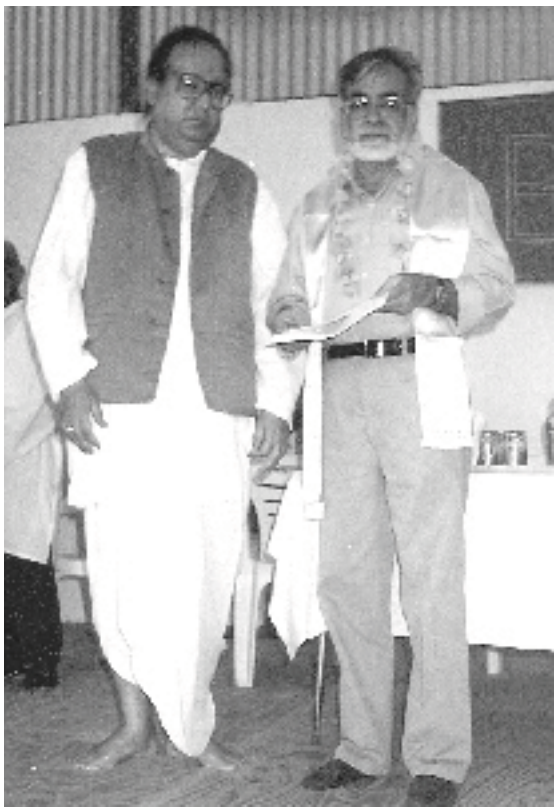

चित्र में – डॉ. नरेन्द्र कोहली महाकवि आदेश के आश्रम ट्रिनिडाड में मई २००२

डॉ.नरेन्द्र कोहली– *एक अप्रतिम प्रतिभा*

लेखक – महाकवि प्रो.हरि शंकर आदेश,
महानिदेशक :भारतीय विद्या संस्थान ट्रिनिडाड, कनाडा एवं
संयुक्त राज्य अमेरिका इं.

मेरे विचार में डॉ. नरेन्द्र कोहली एक ऐसे सुपरिचित हस्ताक्षर हैं, जिससे कदाचित् ही कोई प्रगतिशील बुद्धिजीवी अपरिचित हो। जब मैंने प्रथम बार डॉ. नरेन्द्र कोहली के धारावाहिक रूप से प्रकाशित होने वाले "महासमर" एवं "अभ्युदय" नामक उपन्यासों के कुछ खण्ड पढ़े तो आभास हुआ कि यह व्यक्ति कोई सामान्य लेखक अथवा व्यंग्यकार न होकर एक अनूठी प्रतिभा का धनी , कल्पना एवं समाहार शक्ति का ऊर्जावान पुंज है; गंभीर चिंतक एवं मनीषी विद्वान हैं ; इसके मन - मस्तिष्क में केवल "बाल्मीकि" का मर्यादावादी "वशिष्ठ" ही नहीं अपि-तु "विश्वामित्र" जैसा महान क्रान्तिकारी तपोपूत शक्ति-स्रोत भी विद्यमान है, जो राम के हाथों केवल आतंकवादिनी ताड़का का वध ही नहीं अपितु उच्च वर्ग द्वारा शोषित, प्रताड़ित एवं पद-दलिता तपस्विनी अहिल्या का उद्धार भी न्याय-संगत रूप में करवा सकता है। इतना ही नहीं इन दोनों महर्षियों से भी बढ़कर उनके विचार - लोक में रमा हुआ है त्रेता युग का सर्वश्रेष्ठ ऊर्जावान , तापसी क्रान्तिकारी, संगठन-कर्त्ता ,समर-पटु,अपराजेय "कुंभज" (अगस्त्य ऋषि)हैं। उसी क्षण से मैं उनका प्रशंसक एवं नैष्ठिक पाठक बन गया। उनसे साक्षात्कार की स्पृहा जागरूक हो उठी। किन्तु परिस्थितियां अनुकूल नहीं बन पाईं। लगभग दो दशक व्यतीत हो गए। तब एक दिन मेरे परम आत्मीय डॉ. प्रेम जनमेजय ने मुझे अंतिम रात्रि को विश्व विद्यालय में सूचना दी कि उनके प्रयत्न से वेस्ट इंडीज़ विश्वविद्यालय के सेंट अगस्टिन परिसर में एक अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी संगोष्ठी आयोजित होने जा रही है।

उन से ज्ञात हुआ कि इस संगोष्ठी में इंग्लैंड के श्री तेजेन्दर शर्मा, डॉ.पदमेश गुप्त, सूरिनाम से डॉ.पुष्पिता आदि के अतिरिक्त भारत से डॉ. कन्हैयालाल नन्दन, डॉ. निर्मला जैन, डॉ. सूरज भान सिंह, गिरीश पंकज, डॉ. सूर्यबाला, डॉ.दिविक रमेश, डॉ. अशोक चक्रधर, डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण, नरेन्द्रकुमार वर्मा, सत्यनारायण मौर्य आदि के अतिरिक्त डॉ.नरेन्द्र कोहली भी सपत्नीक भाग लेने आ रहे हैं तो मैंने अपने भाग्य को सराहा तथा गोस्वामी तुलसी दास जी को स्मरण किया - जा पर जाको सत्य सनेहू ... अतएव मैंने डॉ. प्रेम जनमेजय के प्रेमाग्रह पर उन दिनों ट्रिनिडाड में ही रहने का कार्यक्रम बना लिया। इस हिन्दी - यज्ञ के मुख्य पुरोधा भले ही डॉ. प्रेम जनमेजय थे परन्तु ट्रिनिडाड जैसे लघु द्वीप में इन साहित्य - देवताओं का आगमन परोक्ष रूप से भारतीय विद्या संस्थान की तपस्या का ही फल था। कार्यक्रम में इन सभी महापुरुषों के दर्शन हुये परन्तु संवाद शून्यता ही रही। मैं हर सत्र में उपस्थित रहा। संस्थान के स्वयं सेवक भी अन्य हिन्दी स्वयं सेवकों के साथ मिलकर कार्य कर रहे थे। संगोष्ठी समाप्त हुई। अंतिम रात्रि को विश्व विद्यालय में विराट कवि सम्मेलन आयोजित किया गया। मुझे ससम्मान एवं सानुरोध उस कवि-सम्मेलन का अध्यक्ष बनाया गया। अध्यक्ष होने के फलस्वरूप मुझे डॉ. कन्हैया-लाल नन्दन, डॉ. नरेन्द्र कोहली तथा डॉ.अशोक चक्रधर के साथ लगभग सटकर मंच पर बैठने का सान्निध्य लाभ प्राप्त हुआ। अशोक चक्रधर जी कवि - सम्मेलन का संचालन कर रहे थे। अशोक जी हँसा रहे थे। श्रोता हँस रहे थे। सदैव की भांति आधे से अधिक कवि सम्मेलन अशोक जी का ही था। आनन्द आ रहा था। उस समय डॉ. नरेन्द्र कोहली मेरे समीप विद्यमान थे। संक्षेप में, मैं उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुआ। मैं भी अधिक संवाद-शील व्यक्ति नहीं हूँ, अत: किसी पर अनावश्यक रूप से संवाद नहीं थोपता। वार्तालाप औपचारिक था, औपचारिक ही रहा।

आरंभ से ही मेरी प्रबल अभिलाषा थी कि इन सभी विद्वानों को अपनी अकिंचन कुटी पर आमंत्रित करूँ। मैंने अपनी इच्छा डॉ. प्रेम जनमेजय से व्यक्त की। बड़े प्रयत्न के पश्चात् हमें 2 मई 2002 को मध्यान्ह में दो-तीन घंटों का समय मिला, यही क्या कम था? उस दिन जनावकाश नहीं था। अत: अंतिम क्षण में अतिथियों को जुटाना दूर रहा भारतीय विद्या संस्थान के सदस्यों को भी जुटाना बड़ी टेढ़ी खीर थी। येन-केन व्यवस्था की। सभा-भवन भरा हुआ था।

अब घड़ी आई जिसकी उत्सुकता से प्रतीक्षा थी। उपर्युक्त सभी विद्वान मेरे आश्रम में पधारे। जब डॉ. नरेन्द्र कोहली मेरे अकिंचन कुटी पर पधारे तो आभास हुआ मानो "महर्षि याज्ञ-वल्क्य जी" "भरद्वाज आश्रम" पर पधारे हों। मुख्य मंच पर डॉ. निर्मला जैन, डॉ. कन्हैयालाल नन्दन, डॉ. नरेन्द्र कोहली , मैं तथा डॉ. प्रेम जनमेजय आदि आसीन थे। मैं यहां आत्मश्लाघा के पातक से बचने के लिए पाठकों से क्षमा मांगते हुए कहना चाहता हूँ कि मैंने जीवन में किसी भी बड़ी से बड़ी सभा में धारा प्रवाह भाषण देने में कभी कोई त्रुटि नहीं की परन्तु उस दिन डॉ.कोहली एवं डॉ. नन्दन जी के सान्निध्य से उल्लासित एवं उद्वेलित होकर मैं स्वागत -वक्तव्य में अपने कुछ विशिष्ट अतिथियों का उल्लेख करना भूल गया। जिसका मुझे आज भी दु:ख है। यहां कहने का अभिप्राय: यह है कि मैं अपने प्रिय लेखक डॉ. कोहली से वार्तालाप कर के उनका सामीप्य पाकर इतना आत्म-विभोर हो गया था कि कुछ औचपारिकताएं तक विस्मृत कर बैठा। अस्तु, मैंने उस दिन डॉ. कोहली को समीप से देखा तो आभास हुआ कि वे केवल सुदर्शन ही नहीं सुदर्शनविद् भी हैं। मैंने परिलक्षित किया कि उनके चश्मे के पीछे से झांकते हुए झील से गहरे चक्षुओं में गंभीर विचारों की अगम्य गहराई है; उनके उन्नत ललाट पर अंकित रेखाएं इसका संकेत देती हैं कि वे एक प्रज्ञावान पुरुष हैं। उनकी मितभाषिता एवं स्मिति के अंतराल में अनुभूतियों का एक ज्वालामुखी है जो अभिव्यक्ति के लिए समद्युत है। उस दिन भारतीय विद्या संस्थान ट्रिनिडाड इं. द्वारा सारे ही महान विद्वानों का स्वागत एवं सम्मान किया गया था। डॉ. नरेन्द्र कोहली को उस दिन संस्थान का सर्वोच्च हिन्दी सम्मान "ट्रिनि-डाड हिन्दी शिखर सम्मान" प्रदान किया गया। जो हमारे लिए गौरव का विषय था। सारे ही विद्वानों के वक्तव्य तथा कवियों

की कविताएं आज भी आश्रम के परिसर में गूंजती हैं।

डॉ. नरेन्द्र कोहली का जन्म 6जनवरी 1940 को पंजाब के स्यालकोट नामक नगर में हुआ था, जो भारत के विभाजन के पश्चात् पाकिस्तान में चला गया था। इसका अर्थ है कि बालक नरेन्द्र ने वे सभी मर्मान्तक भयानक परिस्थितियां देखी होंगी जो किसी को भी विद्रोही, कवि, चिंतक अथवा आक्रामक बना सकती हैं। ऐसे समाज में उत्पन्न होना जहां स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार तक नहीं था। तब कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि एक निरक्षरा जननी श्रीमती विद्यावती द्वारा जन्य बालक अक्षरों (शब्दों) का महान चितेरा एवं विद्यावान आचार्य बन कर हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपने नाम को अक्षर बना देगा। साथ ही भारत के विभाजनोपरान्त जमशेदपुर भारत में पटरियों पर बैठकर फलादि बेंचकर स्वाबलम्बी बन कर स्वाभिमान पूर्वक अपने परिवार का भार वहन करते समय नरेन्द्र के उपन्यासकार पिता श्री परमानन्द कोहली के हृदय पर क्या बीती होगी? हाई स्कूल तक उर्दू भाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने वाले नरेन्द्र कोहली ने जमशेदपुर कोऑपरेटिव कॉलिज में प्रवेश होने पर हिन्दी का अध्ययन आरंभ किया और अंत में रामजस कॉलिज (दिल्ली वि.विद्यालय) से एम.ए; पीएच.डी परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं।

डॉ. नरेन्द्र जी एक कुशल कहानीकार, उपन्यासकार, नाट्ककार, समीक्षक, बाल कथाकार, तथा लेखक हैं। उन्होंने संस्मरण भी लिखे हैं। उन्हें अनेकानेक उच्चतम पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त हो चुके हैं। कितने ही परास्नातक छात्र उन के साहित्य पर शोध कर के विद्या वाचस्पति (पीएच.डी.)की उपाधियां प्राप्त कर चुके हैं।

डॉ. नरेन्द्र कोहली व्यंग्य साहित्याकाश के एक ऐसे जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं जिसका आलोक व्यंग्य के नित विकासशील नीहारिका-मण्डल पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। यद्यपि डा. नरेन्द्र कोहली की गणना आज के मूर्द्धन्य व्यंग्यकारों में की जाती है किन्तु मैं उन्हें केवल एक व्यंग्यकार ही न मानकर वर्त्तमान युग का एक महान साहित्य - प्रणेता मानता हूँ। जिस व्यक्ति ने भारत - पाकिस्तान विभाजन के समय का अमानुषिक नर संहार देखा हो, जिसने एक के स्थान पर सहस्त्रो "दुर्योधनों" एवं "दु:शासनों" के अमानुषिक अत्याचारों द्वारा सहस्त्रों "द्रोपदियों" के चीत्कार सुनें हों; देखे हों उसके हृदय में "अगस्त्य" नहीं रमेगा तो और कौन रमेगा? उसका "राम" क्रान्तिकारी नहीं होगा तो और क्या होगा? उसकी सशक्त लेखनी से "महासमर" और "अभ्युदय" जैसे कालजयी महान ग्रंथों का सृजन नहीं होगा तो और क्या होगा? "महासमर" एवं "अभ्युदय" जैसे उपन्यासों का प्रणयन करके वे व्यंयकारों की श्रेणी से बहुत ऊपर उठ गए हैं। यद्यपि उन्होनें ढेर सारी पुस्तकें लिखी हैं परन्तु उनकी महानता सिद्ध करने तथा उनका नाम साहित्य के इतिहास में अमर बनाए रखने के लिए ये दो उपन्यास ही पर्याप्त हैं। यद्यपि मैं डॉ. नरेन्द्र कोहली से आयु में चार वर्ष अग्रज हूँ परन्तु उनके प्रति मेरे हृदय में अतुल सम्मान है। मैं उनकी अप्रतिम प्रतिभा को सादर नमन करता हूँ तथा ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वे स्वस्थ एवं दीर्घायु हों।

मुझे प्रसन्नता है कि कनाडा से प्रकाशित होने वाली अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी पत्रिका " हिन्दी चेतना" ऐसे महान लेखक पर विशेषांक प्रकाशित कर रही है। मैं अपने जन्मजात परम कर्मठ मित्र श्री श्याम त्रिपाठी जी तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सुरेखा त्रिपाठी को यह विशेषांक प्रकाशित करने के लिए बधाई देता हूँ।

अभ्यागत : रामकथा का नया रूप

लेखिका – डॉ. निर्मला आदेश एम.ए; पीएच.डी.

2 मई 2002 ई. का दिवस श्री आदेश-आश्रम के इतिहास में एक अत्यन्त सुखद दिवस था। डॉ. प्रेम जनमेजय तथा बहिन आशा जनमेजय के सौजन्य से डॉ. नरेन्द्र कोहली, डॉ. कन्हैया लाल नन्दन, डॉ. दिविक रमेश आदि महान विद्वानों का सार्थ हमारी कुटिया पर पधारा। हम सभी आश्रमवासी कृत-र्थ हुए। यद्यपि उस दिन हम उस कार्यक्रम के लिए पूर्व से तैयार नहीं थे; क्योंकि इस कार्यक्रम की अनुमति हमें विगत रात्रि को ही मिल पाई थी। जनावकाश न होने के कारण प्रबंधकारिणी समिति के सब सदस्य भी नहीं आ पाए थे। प्रधान तथा मंत्री आदि की अनुपस्थिति में स्वागत आदि का कार्य हम दम्पति को ही करना पड़ा। इस अहिन्दी भाषी देश में हमने हिन्दी के कुछ छोटे-छोटे उद्यान लगा रखे हैं। इनमें लगे पौधों को प्रौढ़ होते हुए अभी समय लगेगा। परन्तु विश्वास है कि एक दिन ट्रिनिडाड में हिन्दी बोल-चाल की भाषा भी बन जाएगी। अस्तु, सबका स्वा-गत करके हमें अत्यन्त आनन्द आया। मुझे डॉ. नरेन्द्र कोहली के विचार अत्यन्त तर्क - संगत लगे। वह क्षणिक मिलनोत्सव समाप्त हो गया और अनेक मधुर स्मृतियां छोड़ गया। कालान्तर में जब हमारे निवेदन पर डॉ नरेन्द्र कोहली के सौजन्य से उनका "अभ्युदय" उपन्यास प्राप्त हुआ, तो हम दोनों ही अबिलम्ब उसे आद्योपान्त ध्यान-पूर्वक पढ़ गए। किसी - किसी स्थल पर हम दोनों ने विचार-विमर्श भी किया। मुझे डॉ.नरेन्द्र कोहली का "रामकथा" का आज के परिपेक्ष्य में प्रस्तुतीकरण बहुत सुन्दर और सार्थक लगा।इस रामकथा के पात्रों की कर्मठता उन्हें मानवीय तो बनाती ही है , जीवन्त एवं युग के अनुरूप बनाती है। इस उपन्यास में धनुष - भंग तथा सीता जी को अशोक वाटिका में हनुमान द्वारा दी जाने वाली मुद्रिका की परिकल्पना भी सुन्दर लगी। भाषा शैली भी सहज तथा आकर्षक है। मूल कथा से चिर परिचित होते हुये भी पाठक का कौतूहल जाग्रत ही रहता है। इस पारम्परिक कथा को इस प्रकार प्रस्तुत करना कि उसमें मौलिकता का आभास हो; डॉ.नरेन्द्र कोहली की अपनी विशेषता है। अभ्युदय इस युग का श्रेष्ठ उपन्यास है। अभ्युदय की प्रति हमारे व्यक्तिगत पुस्तक - संग्रह का एक अनमोल रत्न है।

साक्षात्कार – डॉ. नरेन्द्र कोहली

अभिनव शुक्ल (अमेरिका)

अभिनव: क्या लेखन, जीविकोपार्जन का साधन, पूर्णकालिक आजीविका हो सकता है?

नरेन्द्र कोहली: वैसे तो नहीं हो सकता जैसे डाक्टर, इंजिनियर या वकील आदि होते हैं। मैं किसी भी नवयुवक को यह सलाह नहीं दूँगा कि वह केवल लेखन को जीविकोपार्जन का एक मात्र साधन बनाये। साथ में लेखन सम्बन्धी कोई नौकरी की जा सकती है; जैसे पत्रकारिता, अध्यापन आदि। यदि कोई निरंतर लिखता रहे और अच्छा लिखता रहे तो पचास की अवस्था के बाद ठीक-ठाक रायल्टी मिल सकती है।

अभिनव: ऐसा कहा जाता है की हिन्दी पुस्तकों को पढ़ने वाले लोग बहुत कम हो गए हैं, पाठक नहीं हैं। आपका क्या मानना है?

नरेन्द्र कोहली : मेरे जिन उपन्यासों के दस-दस संस्करण आ चुके हैं, उनके आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि हिन्दी में पाठकों की कमी नहीं है। मेरे उन उपन्यासों को कौन खरीदता है, जो शृंखला के रूप में हैं ? चार हज़ार पृष्ठों का 'महासमर', जिसका मूल्य 2100 रुपए है और उसके संस्करण पर संस्करण आ रहे हैं, उसे कौन खरीद रहा है ? पाठक है; किन्तु पाठक अपनी रुचि से, अपनी इच्छा से, अपनी परम्परा के अनुसार जो उसको सुहाता है, वह पढ़ता है। एक संकट अवश्य है, हिन्दी के लिए ही नहीं, अपितु सारी भारतीय भाषाओं के लिए। वह संकट है कि भविष्य में हमारा साहित्य कौन पढ़ेगा ? अगली पीढ़ी को तो हम केवल अंग्रेज़ी पढ़ा रहे हैं।

अभिनव: इधर हिन्दी के कुछ लेखकों नें बड़ा खेद जताया है की उन्हें अच्छी रायल्टी नहीं मिलती है। लोग पढ़ नहीं रहे हैं। आपका क्या विचार है?

नरेन्द्र कोहली : आप दो उपन्यास लिख कर यह चाहेंगे कि हिन्दी का पाठक आपके जीवन भर की ज़िम्मेदारी ले ले, तो ऐसा सोचना आपकी अपनी भूल है। रायल्टी का सीधा सम्बन्ध आपके द्वारा रचे गए साहित्य के स्तर और श्रेष्ठता के साथ उस की विपुलता से भी है।

अभिनव : आप क्यों लिखते हैं?

नरेन्द्र कोहली : इस प्रश्न का उत्तर मैं इस रूप में दूँगा कि मैं ही नहीं बल्कि कोई भी कलाकार अपनी कला की साधना क्यों करता है? यश और धन आदि की कामना तो बहुत बाद में मानव के मन में आती है, कला का आरम्भ तो प्रकृति की ओर से ही होता है। मान लो कोई किसी छोटे बच्चे से पूछे कि भाई आप खेलते क्यों हैं ? क्या उत्तर देगा वह बच्चा। सीधी सी बात है कि वही उसके लिए स्वाभाविक है। लेखक के लिए भी लिखना ही स्वाभाविक है। वह उसका जन्मजात स्वभाव है। उसका पहला लक्षण अभिव्यक्ति की उत्कट इच्छा है।

अभिनव: लेखक के सामाजिक सरोकार क्या हैं ? क्या आपका लेखन स्वान्त: सुखाय ही है या लिखते समय कहीं न कहीं ये सामाजिक सरोकार आपको प्रभावित करते हैं?

नरेन्द्र कोहली: यदि कोई बाहर से किसी को लिखने के लिए प्रोजेक्ट दे, पैसे दे तब बात और हो सकती है। जब मैं अपने मन से अपने लिए अपनी प्रसन्नता के लिए लिख रहा हूँ, तो वह स्वान्त: सुखाय ही है; परन्तु इतना दायित्व तो होता है की जो कुछ भी मैं कर रहा हूँ, उससे समाज को क्या मिलेगा। इससे हित अहित क्या होगा। वस्तुत: लेखक का व्यक्तिगत सुख, समाज के सुख से भिन्न नहीं हो सकता।

अभिनव: भारत का साहित्य क्या ठीक दिशा में जा रहा है?

नरेन्द्र कोहली: शायद कविता का संसार कुछ अधिक संकट की स्थिति में है। कथा साहित्य को कोई इतना नहीं है। माना यह जाता है कि जो स्थापित हो गए हैं, वे तो दिखाई देते हैं, पर जो स्थापित नहीं हुए हैं, वे अभी अदृश्य ही हैं। उन्हें या तो स्थापित होने दिया नहीं जा रहा, या वे इस योग्य ही नहीं हैं। जो अच्छे लेखक हैं, उनको पाठक पसंद करता है। यह अवश्य लगता है की हमारे आलोचक इस समय साहित्य और पाठक के बीच में दीवार की तरह खड़े हैं। जो लोग देश की परम्परा के विरुद्ध इतर विचारधाराएं स्थापित करने का षड़यंत्र करने में लगे हैं, वे प्रयास अवश्य कर रहे हैं, पर मेरी अभी तक तो अटल आशा है कि आने वाला समय अच्छा ही होगा।

अभिनव: आपका नया उपन्यास 'वसुदेव' बहुत पसंद किया जा रहा है. इसे लिखते समय आपके मन में क्या भाव थे ?

नरेन्द्र कोहली: आज भारतीयता लगभग उस स्थिति में है जिसमें वसुदेव और देवकी थे। चारों ओर कंस हैं, राक्षस हैं, हत्यारे हैं, कारागार हैं। भारतीयता और भारतीय परम्पराओं पर चारों ओर से प्रहार हो रहे हैं. राष्ट्रीय अस्मिता इस प्रकार से राक्षसों के द्वारा खाई नहीं जा सकती। इसी भाव को मन में रख कर वसुदेव लिखा है।

अभिनव: हिन्दी चेतना के पाठकों को आप क्या संदेश देना चाहेंगे?

नरेन्द्र कोहली: लेखक का पूर्ण लेखन ही उसका संदेश है। अलग से कहने को क्या है। यदि इतना लिखने के पश्चात् भी संदेश अलग से देना पड़े, तो इसका अर्थ हुआ कि मैं अपनी रचनाओं में स्वयं को अभिव्यक्त नहीं कर पाया हूं।

चटपट सवाल झटपट जवाब

अभिनव:आपकी आने वाली अगली पुस्तक कौन सी है?
नरेन्द्र कोहली: तोड़ो कारा तोड़ो का छठा खंड।

अभिनव :आपका सबसे प्रिय भोजन क्या है?
नरेन्द्र कोहली: कभी सोचा नहीं।
अभिनव: आपकी सबसे प्रिय फ़िल्म कौन सी है?
नरेन्द्र कोहली: भगवान् जानें।

अभिनव : आपके प्रिय लेखक और कवि कौन हैं?
नरेन्द्र कोहली: जयशंकर प्रसाद, निराला, प्रेमचंद, यशपाल, अमृतलाल नागर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, फणीश्वरनाथ रेणु, लियो ताल्स्ताय तथा और भी बहुत सारे।

अभिनव:आपको सबसे अच्छा शहर कौन सा लगता है?
नरेन्द्र कोहली: मैंने अभी कोई भी नगर खरीदने का मन नहीं बनाया है।

डॉ. कोहली अपनी पत्नी डॉ. मधुरिमा जी के साथ शान्ति के कुछ पल बिताते हुये–

'तोड़ो, कारा तोड़ो' की यात्रा

श्रीनाथ प्रसाद द्विवेदी, सरी-वैंकुअर

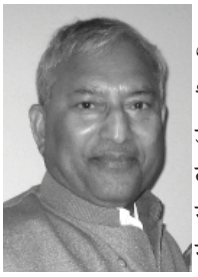

'तोड़ो, कारा तोड़ो' हिन्दी के प्रसिद्ध कथा शिल्पी श्री नरेन्द्र कोहली का बहुचर्चित उपन्यास है जिसमें विख्यात भारतीय दार्शनिक एवं आध्यात्मिक युग पुरुष स्वामी विवेकानंद की जीवन कथा है। स्वामी बनने के पूर्व उनका नाम नरेन्द्र दत्त था। उपन्यास की सम्पूर्ण कथा नरेन्द्र के जन्म से लेकर उनके ठाकुर जी (श्री रामकृष्ण परमहंस) के पूर्ण समर्पण की कथा है। नरेन्द्र कहते हैं 'उनके इस प्रकार के विश्वास और प्रेम ने ही मुझे जन्म भर के लिय बाँध लिया है।'

नरेन्द्र एक ऐतिहासिक पात्र हैं इसलिये उपन्यासकार कोहली उनके चरित्र की सत्यता बनाये रखते हैं। सारी घटनायें लगभग उन्हीं के इर्द गिर्द घूमती हैं। यह उपन्या चरित्र प्रधान है। कोहली जी ने उसे रोचक बनाने के लिये काल्पनिक पात्रों तथा प्रसंगों का सावधानी पूर्वक चयन किया है और उसमें संवेदनाओं के गहरे रंग भरे हैं फलस्वरूप उपन्यास अधिक प्रभावशाली तथा आकर्षक बन सका है।

नरेन के जन्म की सूचना बुआ-पीशी मां देती हैं तभी से उसके वकील पिता विश्वनाथ बुआ से बात करते हुए सोचने लगते हैं कि कहीं चार पुत्रियों के बाद उसके पिता जो सन्यासी हो गये थे लौटकर बेटे के रूप में तो नहीं आ गये। माता भुवनेश्वरी नरेन में श्रीकृष्ण की बाललीलाओं की छाया देखती हैं। नरेन भागता है माता उसे पकड़ने का प्रयास करती, उसे फुसलाती हैं। नरेन कहता है 'नहीं चाहिए प्यार, यह तो पकड़ने का बहाना है।' उनका दिल धक से रह गया, 'ये तो सन्यासी की भाषा बोलता है'। इस प्रकार आगामी घटना के प्रति पाठक की जिज्ञासा कोहली जी बनाये रखते हैं। कथा का प्रवाह घटनाओं के गुथे रहने से बना रहता है। बचपन की बालक्रीड़ाओं में नरेन का असाधारण व्यक्तित्व छिपता नहीं। अपनी मेधा शक्ति तथा तार्किक दृष्टिकोण का सदुपयोग वे सामाजिक व्यवस्था और धार्मिक मान्याताएं को समझने-परखने में लगाते हैं। इस संदर्भ में 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात्' वाली कहावत सत्य लगती है। इस उपन्यास में ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिनमें नरेन्र (बिलेह) की दार्शनिकता तथा आध्यात्मिक-ता से परिचय मिलता है : एक दिन नरेन ने अपनी कीमती और प्यारी धोती सन्यासी को दे दी। माँ ने पूछा 'किसे दे दी् सन्यासी को दे दी, उसका उत्तर था। 'दान तो मूल्यवान वस्तु का ही होता है। कबाड़ का त्याग तो त्याग नहीं, स्वार्थ है।' माँ भुवनेश्वरी के मन में नचिकेता की कथा घूम गई।

नरेन कक्षा में शिक्षक द्वारा पहले अंग्रेजी पढ़ाने का विरोध करता है। नरेन का तर्क था कि पहले अपनी भाषा की नींव ठीक करें फिर विदेशी। भूगोल की कक्षा में शिक्षक

गलत बता रहे थे कि अमेरिका की राजधानी न्यूयार्क है। नरेन के पूछने पर बतलाया कि वाशिंगटन है। शिक्षक अपने अहं के कारण अपनी गलती नहीं मानते और उसे उल्टा दंडित करते हैं। नरेन माँ को कमक्षा की घटना बतलाता है और कहता है - 'गुरु को परखना होगा। श्रद्धा तो उसी गुरु के प्रति की जा सकती है जो चरित्र और ज्ञान का सच्चा हो।'

नरेन व्यायाम तथा संगीत आदि की शिक्षा ग्रहण करता और घूंसेबाजी (बाक्सिंग), लाठीचालन का प्रशिक्षण प्राप्त कर प्रतियोगिता में भाग लेता। कोहली ने संगीत की बारीकियों एवं घूंसेबाजी और लाठी चालन के दांवपेचों का विस्तृत वर्णन किया है जिससे ये प्रसंग अधिक प्रामाणिक बन सके हैं। इस उपन्यास में कबीर, मीरा और बंगला भाषा के कुछ गीत हैं और शास्त्रों के उद्धरण भी जो उपन्यासकार की अध्ययनशीलता के प्रमाण हैं।

जब ह्यूम के संशयवाद, हर्बर्ट स्पेंसर के अज्ञेयवाद, डेकार्ट, स्मिनोज और लास्की आदि विचारकों की गंभीर चर्चाएँ होती हैं तो निश्चय ही कथा ज्ञान के बोझ से झुक जाती है और उसका प्रवाह धीमा पड़ जाता है। परंतु परोक्ष रूप से पाठक के लिये वही ज्ञानवर्धक भी बन जाती है।

उपन्यास में दो ऐसी घटनायें हैं जिनमें नरेन का संयमी रूप उभर कर आता है। पहली घटना है - ब्राम्हणी युवा विधवा कुसुमलता का गली के उस पार रहने वाले युवा नरेन के प्रति आकर्षण और रात्रि में उसके कमरे में जाने की घटना। जिसमें नरेन उसे 'माँ' शब्द से सम्बोधित करता है। दूसरी घटना है वेश्या कान्तिमोहिनी का नरेन को फँसाने की कोशिश करना किन्तु नरेन्द्र समझ जाता है और उसे चेतावनी देता है कि ईश्वर की भक्ति करें पाखंड नहीं। कोहली द्वारा इस प्रकार का मानसिक विश्लेषण चरित्र की सहजता पर आधारित है जो जैनेन्द्र, अज्ञेय अथवा इलाचन्द्र जोशी की मानसिक ग्रन्थियों तथा कुंठाओं के विश्लेषण से भिन्न है।

नरेन ब्रह्म समाज से प्रभावित होता है क्योंकि उसमें नारी शिक्षा, बाल विवाह का विरोध, विधवा विवाह आदि प्रगतिशील विचार हैं और वह हिन्दू धर्म मे आये हुये अनेक प्रकार के अंधविश्वासों और कुरीतियों के निराकरण का पक्षधर बन जाता है। नरेन्द्र के पिता की मृत्यु के पश्चात् परिवार की सारी जिम्मेदारी उसके कंधों में आ जाती है। वे कालीमठ मंदिर जाते हैं और माँ से भक्ति, वैराग्य और विवेक की मांग करते हैं पारिवारिक कष्टों को दूर करने की प्रार्थना नहीं। इस प्रकार नरेन सन्यासी जीवन यात्रा पर निकल पड़ते हैं। इस घटना से उपन्यास के शीर्षक 'तोड़ो, कारा तोड़ो' की सार्थकता सिद्ध होती है।

कोहली जी ने पात्रों के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग किया है इसका यह उदाहरण देखें - एक बार जब नरेन और उसके साथियों को मल्लाह घेर लेते हैं तो नरेन उसकी सहायता के लिये दो अंग्रेज सिपाहियों को ले आता है उनमें से एक कहता है 'बच्चा लोग को तंग करता है यू रास्कल्स'। नरेन जैसे पारिवारिक व्यक्ति, मेधावी छात्र और प्रगतिशील युवक के मानसिक विकास का साफ-सुथरा मनोवैज्ञानिक सफल चित्रण कोहली जी जैसे अनुभवी साहित्यकार द्वारा ही सम्भव है।

इस उपन्यास में कथा की जो विश्वासनीयता मौजूद है वह इसे आत्मकथा के समीप लाकर खड़ा कर देती है। चाहे राहुल जी का 'वोल्गा से गंगा' हो अथवा प्रतिभा राय का 'उत्तर मार्ग' इन दोनों में ऐतिहासिक सामग्री है लेकिन कोहली जैसी कथाशिल्प वाली रोचकता नहीं।

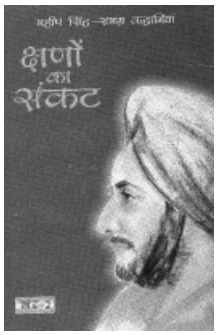

प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. महीप सिंह के साथ हिन्दी चेतना के संपादक श्री श्याम त्रिपाठी ने ओटवा में भेंट की और साहित्यिक विषयों पर चर्चा की।

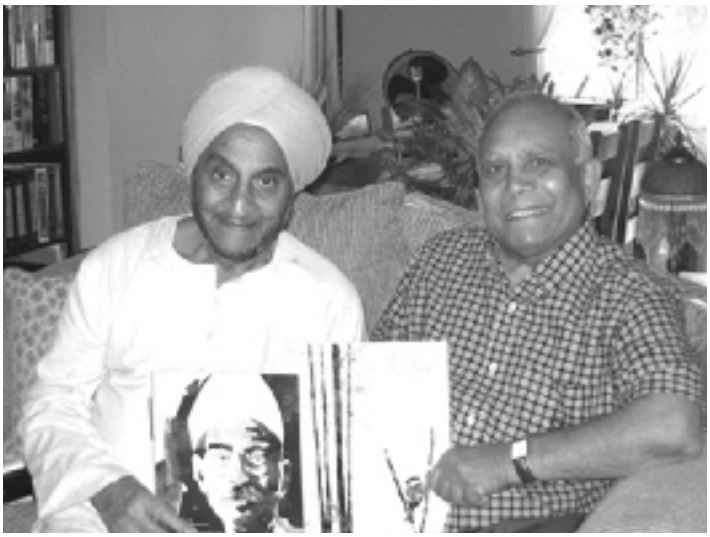

डॉ. महीप सिंह 'हिन्दी चेतना' के संपादक श्याम त्रिपाठी से चेतना की प्रति स्वीकार करते हुये –

डॉ. महीप सिंह अपने उपन्यासों की प्रतियाँ 'हिन्दी चेतना' के संपादक श्री श्याम त्रिपाठी को भेंट करते हुये –

शिल्पगत वैविध्य का व्यंग्यकार

- प्रेम जनमेजय

साहित्य के गलियारों में यह ही खबर गुंजायमान है कि नरेंद्र कोहली इन दिनों प्रख्यात घटनाओं पर आधारित उपन्यासों के सृजन में ही रत हैं और ऐसे में अनपढ़ पाठकों के लिए यह खबर कि वे व्यंग्य रचनाओं का सृजन भी कर रहे हैं, चौंकाने वाली ही है। जिस निरंतरता के साथ नरेंद्र कोहली ने प्रख्यात कथा पर आधारित उपन्यासों का सृजन किया है उसी निरंतरता के साथ व्यंग्य रचनाओं का सृजन भी जारी रखा है। यह दीगर बात है कि व्यंग्य-लेखन के अपने आरंभिक काल में उन्होंने 'आश्रितों का विद्रोह', 'शंबूक की हत्या' और 'पांच एब्सर्ड उपन्यास' जैसी आकार में बड़ी व्यंग्य रचनाओं का सृजन किया पर बाद में वे 'महासमर' और 'तोड़ो कारा तोड़ो' जैसी वृहद् उपन्यास- शृंखला का सृजन तो करते रहे पर व्यंग्य के क्षेत्र में उन्होंने किसी वृहद् शृंखला का सृजन नहीं किया।

नरेंद्र कोहली ने जब लिखना आरंभ किया था उस समय व्यंग्य के क्षेत्र में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवीन्द्रनाथ त्यागी ही छाए हुए थे और ऐसे में नए लेखकों के सामने स्वयं को दोहराने के खतरे से बचने और कुछ नया प्रस्तुत करने की चुनौती थी। नरेंद्र कोहली ने इस चुनौती का बखूबी सफलता के साथ सामना किया।

शिल्पगत वैविध्य का हिंदी व्यंग्य साहित्य में अभाव रहा है पर इस अभाव को नरेंद्र कोहली ने तोड़ा है। हिंदी व्यंग्य वस्तुनिष्ठ अधिक रहा है। यही कारण है कि हिंदी व्यंग्य के रचनाकारों नें कथ्य की विविधता पर अधिक बल दिया है। नरेंद्र कोहली ने 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं' की भूमिका में स्वीकार किया है- 'शंबूक की हत्या' तक आते आते सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियां पहले से भी अधिक विकट हो चुकी थीं। यद्यपि मेरा दृष्टिकोण पहले वाला ही था, किंतु मैं उस शिल्प को दोहराना नहीं चाहता था।' लगता है, व्यंग्य-लेखन के आरंभिक काल से ही शिल्प का वैविध्य भाव उनके अवचेतन में प्रबल था। कुछ नया करने, पुराकथाओं को नई दृष्टि से देखने-परखने की उनकी वृत्ति उन्हें कुछ नया करने की ओर प्रेरित करती रहती है।

व्यंग्य के संबंध में नरेंद्र कोहली का मत है कि वह पीड़ा से उत्पन्न होता है। 'अस्पताल' की रचना प्रक्रिया की चर्चा करते हुए नरेंद्र कोहली ने लिखा है -

'अस्पताल' की रचना बहुत ही पीड़ित मनः स्थिति में हुई। अब सोचता हूं तो लगता है कि जब तक सह सकता था सहा, पर जब नहीं सह सका तो मैं व्यंग्य पर उतर आया। पीड़ा ने ही मुझे अपने से कुछ बड़ा कर दिया था और एक ऐसी आंख दी थी जिसने उस सारे वातावरण को कार्टूनिस्ट की दृष्टि से देखा था।' हिंदी व्यंग्य साहित्य में एब्सर्ड उपन्यासों के वे एक मात्र सर्जक हैं, इतने 'मात्र' कि वे पांच के पश्चात् छठी एब्सर्ड रचना का सृजन नहीं कर पाए। पांच एब्सर्ड उपन्यास प्रयोग-मात्र ही रह गए। सुभाषचंदर'अस्पताल' रचना की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं 'पांच एब्सर्ड उपन्यास' उनकी अद्भुत औपन्यासिक कृति है। कथ्य के स्तर पर भी और शिल्प के स्तर पर भी। विशेष रूप से इसकी 'अस्पताल' नामक रचना तो अद्भुत है। मेरी दृष्टि में यह गंभीर व्यंग्य हास्य रहित व्यंग्य की सर्वश्रेष्ठ कृति है। श्रीलाल शुक्ल जिस प्रकार 'राग दरबारी' के लिए जाने जाते हैं, उसी प्रकार यह कृति पाठकों को नरेंद्र कोहली को कभी भूलने नहीं देगी।. . .नरेंद्र कोहली हमारे समय के बहुत बड़े रचनाकार हैं, बल्कि परसाई युग की 'चौकड़ी' को पंचकड़ी में बदलने की क्षमता रखने वाले। वैसे भी जब हम 'राग दरबारी' के कारण श्रीलाल जी को इस चौकड़ी में रखते हैं तो 'अस्पताल' जैसी विश्व साहित्य की दुर्लभ कृति के बाद नरेंद्र कोहली को दूर रखना कितना न्यायसंगत है। अगर उन्होंने रामकथा, कृष्ण कथा, विवेकानंद कथा आदि का सर्वश्रेष्ठ लेखक बनने की 'गलती' कर ही दी है तो क्या हम उन्हें व्यंग्य-क्षेत्र में उनका यथोचित सम्मान नहीं देंगे?' सुभाषचंदर के साथ यह सवाल नरेंद्र कोहली के अनेक प्रशंसकों के मन में हैं।

नरेंद्र कोहली निरंतर व्यंग्य लिख रहे हैं, जिसका परिणाम हैं, उनके पिछले कुछ वर्षों में प्रकाशित 'आत्मा की पवित्रता', 'जनतंत्र का गणित', 'मेरे मोहल्ले के फूल', 'सबसे बड़ा सत्य', 'वह कहां है' आदि व्यंग्य संकलन। ये उनके निरंतर व्यंग्य लेखन का ही परिणाम है कि 'व्यंग्य यात्रा' के लिए उनसे उनकी श्रेष्ठ रचना का चुनाव करने के लिए कहा तो उन्होंने अपनी इधर की रचना का चुनाव किया और लिखा - अलग-अलग समयों पर पृथक-पृथक कारणों से विभिन्न रचनाएं प्रिय लगने लगती हैं। बहुत लंबे समय तक मैं 'अस्पताल' को अपनी सर्वाधिक प्रिय रचना मानता रहा। किंतु उसके पश्चात भी बहुत कुछ ऐसा लिखा गया है, जो मुझे प्रिय भी है और लेखन की दृष्टि से महत्वपूर्ण भी। अपनी रचनाओं की साहित्यिक उत्कृष्टता इत्यादि की चर्चा लेखक स्वयं नहीं करता। न उसे कभी इसका अधिकार दिया गया और न ही शालीनता उसकी अनुमति देती है। इधर मुझ से कुछ छोटी, किंतु अत्यंत तीखी रचनाएं लिखी गई हैं। वे मेरे लिए बहुत महत्वपूर्ण और अत्यंत प्रिय रचनाएं हैं। किंतु उनका संक्षेप होना ही उन्हें प्रतिनिधि रचना होने से रोक देता है। 'हुए मर के हम जो रुसवा. .' अनेक कारणों से मेरी सर्वाधिक प्रिय व्यंग्य रचनाओं में से एक है।

व्यंग्य लेखन में जिस स्पष्टवादिता की आवश्यकता होती है वह नरेन्द्र कोहली के लेखन और व्यक्तित्व में है। वे जो हैं, उसे छिपाते नहीं हैं और अपनी विचारधारा के संदर्भ में अस्पष्ट अथवा संकुचित नहीं हैं; अपितु उसके प्रति दृढ़ हैं। इस दृढ़ता के फलस्वरूप उनके वैचारिक शत्रु - वे ऐसा ही मानते हैं - स्पष्ट हैं। ऐसे में वे न तो यह अपेक्षा करते हैं कि उनके 'शत्रु' उनके प्रति नम्र हों और न ही उनसे नम्र रहने की अपेक्षा रखें। आप कह सकते हैं कि इस मामले में वे असहिष्णु हैं। यही असहिष्णुता संभवतः उनकी व्यंग्य रचनाओं की प्रखरता की ताकत है और संभवतः इसी कारण उनकी व्यंग्य रचनाओं में आत्म-व्यंग्य की कमी है।

डॉ. कोहली मंच से श्रोताओं को संबोधित करते हुये

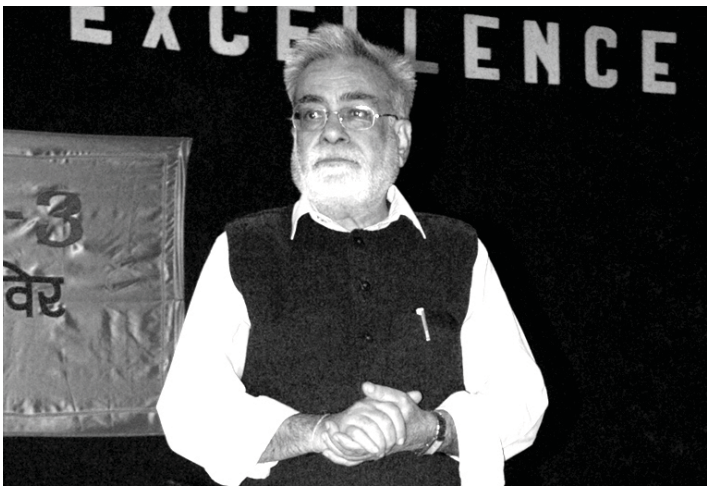

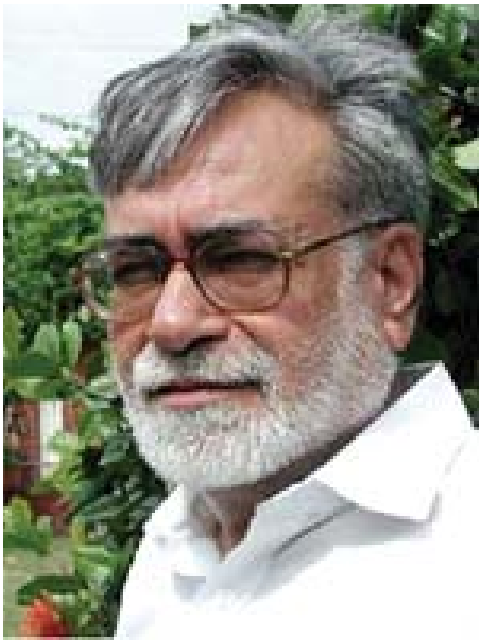

विभिन्न मुद्राओं में डॉ. कोहली जी

भारतीय संस्कृति के संवादक

रेणु राजवंशी गुप्ता

डॉ. नरेन्द्र कोहली का नाम न तो भारतीय हिन्दी जगत के लिए नया है और न ही प्रवासी हिन्दी जगत के लिए नया है। आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व ने मुझे सदैव से ही प्रभावित किया है। कहते हैं कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। परन्तु उससे पूर्व लेखक अपने लेखन का धारक होता है एवं लेखन लेखक का बिम्ब होता है। यदि लेखक एवं उसके लेखन में साम्य नहीं है तो लेखन प्रभावकारी नहीं होता है वह क्षणभंगुर हो जाता है।

तो आइये देखें क्या है डॉ. नरेन्द्र कोहली का रचना संसार? बाहर से सामान्य सा दिखने वाला जीवन, निरंतर खोज में लगा हुआ है। कुछ लोग बाहर इतना नहीं चलते हैं , परन्तु भीतर ही भीतर अनबरत यात्रा करते रहते हैं। नरेन्द्र कोहली भी एक ऐसा ही नाम है।

आपका जन्म अविभाजित भारत के सियालकोट नगर में 6 जनवरी 1940 को हुआ था। विभाजन से पूर्व आप लाहौर में रहे। बाद में आपका परिवार जमशेदपुर (झारखंण्ड) में आकर बस गया था। आपकी संपूर्ण शिक्षा - दीक्षा जमशेदपुर एवं रांची में हुई थी। सन् 1970 में आपने दिल्ली विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि ली एवं कालान्तर में वहीं प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हो गये। सन् 1995 में आपने स्वेच्छापूर्वक अवकाश ग्रहण कर लिया। आपकी धर्मपत्नी डॉ. मधुरिमा कोहली भी दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं। आपके दो पुत्र हैं एक दिल्ली में रहते हैं एवं दूसरे अमेरिका में बस गये हैं।

प्रत्येक लेखक की भाँति कोहली जी का रुझान बाल्यकाल से साहित्य एवं लेखन की ओर था। आपने विद्यार्थी जीवन में कहानी लिखनी आरम्भ कर दी थी। आपकी पहली कहानी उर्दू में लिखी हुई थी - परन्तु शीघ्र ही आप का लेखन हिन्दी में होना आरम्भ हो गया। वर्ष 1960 से आपने नियमित कहानियां लिखनी आरम्भ कर दी थीं। वर्ष 1965 में आपने व्यंग्य लेखन में प्रवेश किया। आरम्भ में आपने पारिवारिक एवम् सामाजिक पृष्ठभूमि पर कहानी एवं उपन्यास लिखे थे। यदि हम उनके साठ एवं सत्तर दशक तक के साहित्य को पढ़ें तो हम कुछ सीमा तक सामाजवादी एवं कम्यूनिस्ट विचार धारा का प्रभाव देख सकते हैं। राजनैतिक एवं सामाजिक जीवन की विसंगतियों का चित्रण एवं मानवीय क्रूरता का विवरण अधिक मिलता है।

सत्तर दशक के अंत में नरेन्द्र कोहली का 1800 पृष्ठों का रामकथा पर आधारित अभ्युदय उपन्यास चार खंण्डो में प्रकाशित हुआ। अभ्युदय ने हिन्दी जगत को आंदोलित कर दिया था। जहाँ वामपंथी विचारधारा हिन्दी साहित्य पर हावी हो रही थी। कोहली जी के अभ्युदय अभियान ने मानो हिन्दी साहित्य को भारतीय संस्कृति से पुन: परिचित कराय। अभ्युदय में भगवान राम की कथा को आधुनिक संदर्भ में दिखाया गया है। रामायण के पात्रों का मानवीकरण किया गया है। यहाँ राम एवं सीता अवतार नहीं हैं समाज सुधाारक हैं, भविष्य दृष्टा हैं एवं अन्याय के विरुद्ध लड़ने वाले पात्र हैं। उनके लिए वनवास मात्र वचन पालन हेतु नहीं था वरन् मध्य और दक्षिण भारत में एक आन्दोलन था सुधार अभियान था। अभ्युदय में उच्च जीवन मूल्यों एवं अभिवृद्ध सांस्कृतिक परम्परा के दर्शन होते हैं।

कोहली जी का अगला उपन्यास 'अभिज्ञयान' कृष्ण कथा पर आधारित था। इसकी पृष्ठभूमि राजनैतिक थी। यहां कृष्ण राजनैतिक रूप से प्रभावशाली हैं एवं उनका मित्र सुदामा कृष्ण के सम्पर्क में आकर धनी एवं समाज में प्रसिद्ध हो जाता है।

अभिज्ञान के पश्चात कोहली जी महाभारत कथा की ओर मुड़ गये और उनकी बेजोड़ कलम से निकला आठ खंण्डों का "महासमर"। महासमर में कोहली जी ने एक अदभुत काम किया । उन्होंने महाभारत के प्रत्येक पात्र को महासमर की प्रमुख धारा में ही रखा है। परन्तु उसका पृथक अस्तित्व भी रखा है। प्रत्येक पात्र का नये रंग से विशलेषण किया है। उदाहरणार्थ नारी पात्रों में द्रौपदी , कुंती एवं गांधारी को तीन भिन्न श्रेणियों में रखा है। "कुंती" नारी के 'माँ' रूप का प्रतीक है तो 'द्रौपदी' नारी के पत्नी रूप का प्रतिनिधत्व करती है। 'माँ' सदैव देती है लेना उसके अधिकार में नहीं है परन्तु 'पत्नी' देती भी है तो लेती भी है। उसकी कामनाओं की पूर्ति करना पति का धर्म होता है।

युद्ध का चित्रण कोहली जी ने इतना सजीव एवं विस्तृत किया है कि पाठक स्वयं को कुरुक्षेत्र के मैदान में खड़ा पाते हैं। विशेषकर जयद्रथ वध का दिव्य वर्णन अदभुत है।

मेरी दृष्टि में कोहली जी की यह अमर रचना है। " तोड़ो कारा तोड़ो" .. यह स्वामी विवेकानंन्द जी के जीवन पर आधारित उपन्यास है जिसके अभी चार खंण्ड प्रकाशित हुये हैं। परन्तु स्वामी विवेकानन्द का जीवन .. अभी आधा ही लिखा गया है। " तोड़ो कारा तोड़ो" से पूर्व कोहली जी के सब उपन्यास राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक धरातल तक ही सीमित रहे। आध्यात्म की गहराई को छू नहीं सके। परन्तु "तोड़ो कारा तोड़ो" में कोहली जी के भीतर प्रस्फुटित हो रही दिव्य जिज्ञासा स्पष्ट दिखाई दे रही है। इस उपन्यास को पढ़ना तो मानों ऐसा अनुभव है कि कोई मंदिर में बैठकर ध्यान मग्न हो गया हो। स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन का एक - एक क्षण कोहली जी ने प्रवाहमय भाषा में बहा दिया है। भाषा सजीव एवं मानों स्वामी विवेकानन्द के मन को बोल रही हो। जब मैंने कोहली जी से " तोड़ो कारा तोड़ो" पर चर्चा की तो आपने कहा था, " मैं उपन्यास में अपने प्रश्नों के उत्तर खोजता हूं।" जिस प्रकार शिष्य अपने गुरू के समक्ष अपनी जिज्ञासा रखता है और गुरू उसका समाधान करता है इसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द के उपन्यास के विभिन्न पात्रों के प्रश्नों के उत्तर के रूप में वेद - वेदांतो का सार "तोड़ो कारा तोड़ो" में लिख दिया है।

कोहली जी का सद्य: प्रकाशित उपन्यास ' वसुदेव' श्री कृष्ण के पिता का जीवन चरित्र है। वसुदेव के उद्दात चरित्र,सत्यवादिता, विद्वता , निर्भयता , विवेक एवं साहस से अपनी पांचों संतानों का वध देखा , बलराम को संकर्षण विधि द्वारा रोहिणी के गर्भ में स्थापित किया । कृष्ण का जन्म एवं विछोह सहा वह प्रशंसनीय है। संकर्षण को उन्होंने एक शल्य - चिकित्सा के रूप में दिखाया है।

कोहली जी के लेखन में भारतीय इतिहास , संस्कृति एवं जीवन मूल्यों के प्रति अगाध आस्था परिलक्षित होती है। संकर्षण विधि के वर्णन के लिए जब कोहली वैज्ञानिक व्याख्या की खोज में थे तो उनके पुत्र ने ही कहा, "हमारे शास्त्रों एवं ग्रन्थों में जब संकर्षण विधि का विवरण दिया गया है .. तो पाश्चात्य व्याख्या की एवं उस पर तर्क की गुंजायश कहाँ रह जाती है।"

यह आस्था, श्रद्धा कोहली जी के लेखन के सर्व-शक्तिशाली स्तम्भ हैं। कोहली जी से बातचीत करते हुये मैंने पाया कि आप साहित्य में घुसपैठ कर रही राजनैतिक - गुटबाजी, वामपंथियों के विष - वमन रंजत स्वार्थ की पराकाष्ठा से आहत हैं। बात - चीत में ओजस्वी उत्तेजना की एक झलक मिलती है। "तोड़ो कारा तोड़ो" में कोहली जी ने लिखा है कि स्वामी विवेकानन्द बात करते इतने उत्तेजित हो जाते थे कि मानो "फट पड़ेंगे। कोहली जी के व्यक्तित्व में भी यह ओज - तेज दिखाई देता ।

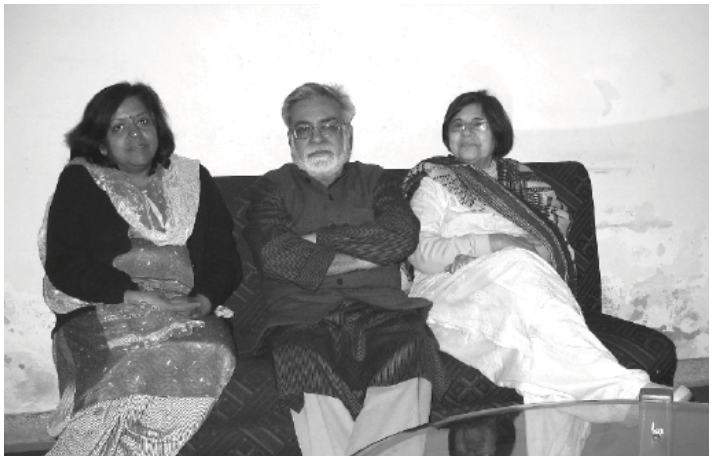

चित्र में – लेखिका रेणु गुप्ता डॉ. कोहली परिवार के साथ....

साक्षात्कार

डॉ. नरेन्द्र कोहली से डॉ.कमलकिशोर गोयनका का

गोयनका - आपका लेखकीय व्यक्तित्व बहुमुखी है। आपने उपन्यास, कहानी, नाटक, व्यंग्य आदि अनेक विधाओं में लिखा है, बल्कि कथा-साहित्य में आपने अपने समय के समाज और पुरा-कथाओं दोनों को ही आधार बनाया है। विभिन्न विधाओं में लिखना, सोचना तथा उनमें अपनी बात कहना एक लेखक के रूप में क्या आपको कष्टदायक तथा कठिन प्रतीत हुआ है?

कोहली : नहीं, वस्तुत: मुझे यह लगता है कि किसी रचना की विधा को तय करने के पीछे दो ही प्रमुख कारण होते हैं - एक तो सामग्री की माँग और दूसरे लेखक का व्यक्तित्व। जो सामग्री मेरे व्यक्तित्व के अनुकूल नहीं है, वह मेरे सृजन की पकड़ में आयेगी ही नहीं। सामग्री की माँग विधा-भेद का कारण बनती है, जब कभी लगता है कि कथा है और एक चरित्र, एक समस्या, एक घटना की सीमा है तो छोटी-कथा रचना या कहानी या लघु उपन्यास की रचना होती है। यदि सामग्री ही ऐसी है जिसमें नाटकीयता और सम्वाद् प्रमुख है तो मेरे भीतर का उपन्यासकार भी कुछ नहीं कर सकता। मुझे नाटक ही लिखना होगा। यह सत्य है कि बड़ा उपन्यास लिखने में अनेक प्रकार की सुविधाएँ हैं। उसके कलेवर और स्वरूप में छोटी कहानी, व्यंग्य, छोटा नाटक, कथा, चिन्तन, दर्शन कुछ भी खप सकता है।

आपके इस प्रश्न के उत्तर में मुझे शरद जोशी से हुए एक सम्वाद् का स्मरण हो आता है। बहुत पहले जब मेरे कुछ आरम्भिक उपन्यासों की सूचना उनको मिली थी तो उन्होंने कहा था कि भई, तुम व्यंग्य छोड़कर भाग क्यों रहे हो? व्यंग्य लिखने वाले हैं ही कितने। मैंने उनसे कहा था कि मुझे स्वयं को किसी एक विधा से बाँधकर चलने की कोई बाध्यता दिखाई नहीं देती। यदि व्यंग्य की सामग्री होगी तो व्यंग्य लिखूँगा, उपन्यास की सामग्री होगी तो उपन्यास लिखूँगा।

ठीक इसी प्रकार नाटक से सम्बन्धित लोग प्राय: यह आग्रह करते हैं कि चूँकि हिन्दी में नाटकों की कमी है, इसलिए मुझे नाट्य-लेखन की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। वस्तुत: मैं तो उपेक्षा किसी भी विधा की नहीं कर रहा किन्तु सृजन की कुछ शर्तें होती हैं और लेखक को उन्हीं के अनुसार चलना पड़ता है। कविता मुझमें नहीं है, इसलिए मैं कविता नहीं करता, किन्तु मैं न कविता का विरोधी हूँ, न उसकी उपेक्षा करता हूँ। यह मेरी सीमा मात्र है, अत: अपनी सीमाओं में जितनी अधिक विधाओं में लिखा जा सके, वह लेखक का सुख है, कठिनाई नहीं।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर और जयशंकर प्रसाद हमारे दो ऐसे साहित्यकार हैं, जिन्होंने प्राय: सारी विधाओं में लिखा है, यह उनकी विराटता है, उनका बिखराव नहीं।

गोयनका : आपके इस वक्तव्य से दो प्रश्न मेरे मन में उठते हैं, एक तो यह कि क्या रचना से पूर्व आप धुँधली, अस्पष्ट रचना-सामग्री से रचना का स्वरूप और उसका भविष्य पकड़ लेते हैं, तथा दूसरा यह कि क्या लेखक बिना कविता के, कवित्व का बड़ा लेखक हो सकता है?

कोहली : गोयनका जी, ये प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। मैं रचना का स्वरूप और भविष्य नहीं पकड़ता, मन में जो कुछ अंकुरित हुआ है, उसे उसी के अनुरूप उपयुक्त शब्द देकर कागज पर उतारने का प्रयत्न करता हूँ। कई बार तो लिखने के बाद ही यह निर्णय होता है कि उसे किस विधा के अंतर्गत रखा जा सकता है। उदाहरण के लिए, बाल साहित्य की कुछ रचनाओं को लेना चाहूँगा। मैं जब लिख रहा हूँ तो मेरे मन में कहीं यह नहीं होता कि मैं बच्चों के लिए रचना रच रहा हूँ। मैं तो केवल रच रहा हूँ, यह तो रचना पूरी हो जाने के बाद तय होता है कि उसे कौन-सी पत्रिका छापेगी, और कौन-सा पाठक पढ़ेगा। और उसके आधार पर उसका नामकरण होता है। मैं यह मानता हूँ जो रचनाएँ बाद में होती हैं, उनके प्रकाशन-मंच और पाठक पहले तय होते हैं। वे सृजनात्मकता की कसौटी पर प्राय: खरी नहीं उतरतीं। सन्तान का जन्म पहले होता है, उसका नामकरण, शिक्षा-दीक्षा और संस्कार बाद में होते हैं।

अब आपके दूसरे प्रश्न का उत्तर है कि यदि नहीं हो सकता, तो मुझे बड़ा लेखक होने का कोई दावा नहीं है, पर प्रेमचंद, यशपाल, अमृतलाल नागर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, तालस्ताय कवि नहीं थे।

गोयनका : कोहली जी, आपने अपनी कथाओं के लिए अपने समाज और पुरा-कथाओं दोनों को ही कथा के रूप में चुना है। कृपया बतायें, आपने पहले समाज को चुना या पुरा कथाओं को।

कोहली : ऐतिहासिक कर्म से तो यही कहा जायेगा कि पहले मैंने अपने परिवार को देखा, फिर समाज को, फिर राष्ट्र को। पहले वर्तमान को देखा, फिर अपने इतिहास और पुराण को। पहले समाचार-पत्र को पढ़ा और फिर अपने निकट अतीत से लेकर सुदूर अतीत की कृतियों तक को। मेरा अनुभव यह है कि जीवन को काल-खण्डों में बाँटकर देखना खण्ड-सत्य की प्रतिष्ठा करना है। जीवन अजय और अनवरत है। आज का समाचार-पत्र जिस जीवन की चर्चा करता है, उसी जीवन की चिन्ता व्यास और वाल्मीकि ने भी की है। प्रकृति के नियम वे ही हैं, मनुष्य का स्वभाव और प्रकृति भी वही है, अन्तर केवल इतना है कि वाल्मीकि और व्यास ने जीवन को उसकी समग्रता में देखा है और उसके सम्बन्ध में बड़ी गहरायी तक जाकर सोचा है। यही कारण है कि वे उसके वास्तविक और यथार्थ रूप के साथ उसके सत्य और उदात्त रूप को भी देख पाये। कोई कारण नहीं है कि हम भूगोल और इतिहास के खण्ड कर दें और स्वयं को दृष्टा मानते हुए भी एक छोटे काल-खण्ड में काराबद्ध हो जायें। इसलिए मैं यह मानता हूँ कि कोई लेखक अपने वर्तमान से मुक्त

नहीं हो सकता, किन्तु अपने वर्तमान का बन्दी होकर रह जाना भी कोई आदर्श स्थिति नहीं है।

गोयनका : तो क्या आपने इसीलिए पुरा कथाओं को अपनी कृतियों का आधार बनाया है कि वे वर्तमान को समझने और पहचानने का भी अवसर देती हैं।

कोहली : मैंने सायास ऐसा कुछ नहीं किया है। वस्तुत: मेरे लिए यह काल-विभाजन ही अप्रभावी हो गया है। मुझे अपने समाज को देखते हुए अथवा आज के समाचार-पत्र को पढ़ते हुए अपनी जातीय कथाओं में उसका प्रतिबिम्ब दिखायी देने लगता है। 'रामायण् और महाभारत्' पढ़ते हुए उनके भीतर से आज का समाचार-पत्र झाँकने लगता है। बंगला देश में (बुद्धिजीवियों की योजना व हत्याओं) को देखकर मुझे राक्षसों द्वारा खाये गये ऋषि याद आते हैं और कनखल में दक्ष प्रजापति का मन्दिर देखकर उन धनवान पुरुषों की याद आती है, जिन्होंने अपनी किसी मजबूरी में अपनी कन्या के लिए कोई निर्धन एवं प्रतिभाशाली वर स्वीकार कर लिया था, किन्तु उसका सम्मान वे कभी नहीं कर पाये। मेरे सम्मुख वर्तमान और अतीत बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से प्रकट होते हैं, मेरे सृजनात्मक संसार में काल सम्बन्धित कोई छुआछूत नहीं है।

गोयनका : आपके इस उत्तर से मैं इतना तो सन्तुष्ट हूँ कि अतीत-वर्तमान से सम्बन्धित हैं, उनका बिम्ब-प्रतिबिम्ब सम्बन्ध है, परंतु जिज्ञासा यह है कि आप वर्तमान से अतीत की ओर जाते हैं या अतीत से वर्तमान की ओर, अर्थात् यदि आपने अतीत की कथाएँ नहीं पढ़ी होतीं तो निश्चित रूप से आप वर्तमान से ही अपनी कहानियाँ और पात्र चुनते। कहीं ऐसा तो नहीं है कि आपके मन, मस्तिष्क और संस्कार में अतीत इतना प्रभावी हो गया है कि आप उनकी कथाएँ चुनकर उन्हें वर्तमान से सम्बद्ध कर लेते हैं?

कोहली : मैं यह मानता हूँ कि मनुष्य के मन-मस्तिष्क का यह यन्त्र प्रकृति ने जैसा बना दिया है, वह वैसा ही काम करता है। ईश्वर ने जिसको जिस प्रकार की प्रतिभा दी है, वह उसी के अनुरूप सृजन करता है। यदि बलिष्ठ फेफड़े मिले हैं तो व्यक्ति दौड़ सकता है, इसलिए खिलाड़ी बनता है। शून्य में लय को देखता-पहचानता है तो संगीत की ओर उन्मुख होता है, इत्यादि। हमारे सामने उदाहरण है कि एक ही समय में एक ही नगर में तीन प्रतिभाशाली लोग-जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद और रामचन्द्र शुक्ल वर्तमान थे। वे एक ही समाज में जी रहे थे, किन्तु अपनी प्रतिभा के अनुरूप अलग-अलग प्रकार से सृजन कर रहे थे। प्रेमचंद चाहकर भी 'रंगभूमि् और गोदान्' नहीं लिख सकते थे। इसलिए मैं वर्तमान से अतीत की ओर जाता हूँ, अथवा अतीत से वर्तमान की ओर आता हूँ, यह तो ईश्वर ही जाने। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि मेरा अनुभव-संसार अथवा सम्वेदना का क्षेत्र केवल आज के समाचार-पत्र, केवल अपने मुहल्ले आदि केवल अपने मित्रों तक सीमित नहीं है। मैं इसे अपना अतीत-मोह नहीं अनुभव
सामग्री की व्यापकता मानता हूँ। वैसे आप अपने सिद्धांत पर अड़े ही रहें तो मान लूँगा कि बच्चे का जन्म तो चार दीवारी के भीतर ही होता है, शेष संसार तो वह बाद में ही देखता है। निश्चित रूप से चाहे पहले अपनी माँ को जानता है, नानी-दादी से परिचय तो उसके बाद ही होता है।

गोयनका : कोहली जी, आपके साहित्य की ख्याति 'दीक्षा के प्रकाशन से हुई' अर्थात रामायण की कथा को चुनने से हुई और महाभारत पर भी अब तक छ: कृतियाँ आ चुकी हैं। यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से मन में आता है कि आपने 'रामायण और महाभारत' का अध्ययन मूल संस्कृत भाषा से किया अथवा उनके गोविन्दराज, नीलकंठ आदि विख्यात टीकाकारों की टीकाओं से?

कोहली: मेरी प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू भाषा के माध्यम से हुई थी। मेरा जन्म उस परिवार में हुआ जिसमें सिवाय मेरी बड़ी बहन के और किसी को हिन्दी का भी कोई विशेष ज्ञान नहीं था। मैंने हिन्दी परिश्रमपूर्वक कॉलेज में आने के पश्चात् सीखी। संस्कृत का मुझे आरम्भिक ज्ञान भी नहीं है। यह मेरी सीमा भी है और मेरी पीड़ा भी। मैं जानता हूँ कि संस्कृत का ज्ञान न होने के कारण मैं 'रामायण और महाभारत' का पूर्ण रसास्वादन नहीं कर सकता। उनका काव्य-तत्व मुझ तक नहीं पहुँचा। टीकाओं और भाष्यों को पढ़ने में मेरी बहुत रुचि नहीं है। मेरा विश्वास मन्दिर के पुजारी के माध्यम से भगवान तक जाने में नहीं है। हाँ, साधकों के सानिध्य से लाभ हो तो कोई आपत्ति भी नहीं है। मैंने टीकाएँ नहीं पढ़ी हैं, इसलिए मैंने स्वयं को 'रामायण और 'महाभारत' का आधिकारिक विद्वान कभी नहीं माना। मैं विद्वान नहीं हूँ, मैं तो कथाकार हूँ, अनुवाद के माध्यम से कथा तक मेरी पहुँच हो जाती है और सामग्री के विषय में अपनी धारणा मैं बना लेता हूँ। यह एक प्रकार से मेरी कमी हो सकती है, पर मुझे यह भी लगता है कि यदि मैं संस्कृत का पंडित होता, मूल संस्कृत और उन भाष्यों को पढ़ और समझ सकता, उनमें आकंठ डूब सकता तो शायद मैं उपन्यासकार नहीं होता। भगवान की इच्छा थी कि मैं उपन्यास-कार ही बनूँ। मुझे उसकी इच्छा से कोई विरोध नहीं है।

गोयनका : लेकिन कम्बन्, तुलसी, एकनाथ, कृत्तिवास आदि की कृतियाँ तो आपने पढ़ी होंगी। इनमें से कौन आपकी भावना एवं चेतना के सबसे अधिक निकट है?

कोहली : मुझे तमिल तथा बंगला इत्यादि भाषाओं का भी ज्ञान नहीं है। मैंने कंम्बन् और कृत्तिवास को भी अनुवाद के माध्यम से ही पढ़ा है। तुलसी और स्वयंभू को भी यथा-शक्ति पढ़ने और जानने का प्रयत्न किया है। मेरी यह धारणा है कि किसी भी उपन्यासकार के लिए वाल्मीकि ही सबसे अधिक निकट अनुभव होने योग्य हैं। जितना तादात्म्य वाल्मीकि से होता है, वह तुलसी से भी नहीं होता। 'महासमर' के सम्बन्ध में भी व्यास के अतिरिक्त अन्य लोगों को अनुवाद के माध्यम से ही पढ़ा है। 'दुर्गा भागवत' मुझे प्रिय है, इरावती कर्वे के तर्कों से मैं सहमत नहीं हूँ, इसलिए

उनके अनेक निष्कर्षों को भी मैंने नहीं माना। शिवाजी सांवत और भैरप्पा के चरित्रों सम्बन्धी परिकल्पना मुझे आकृष्ट नहीं करती। इस संदर्भ में 'दि महाभारत - 'ए क्रिटिसिज्म्' के लेखक सी.वी. वैद्य का आभार मैं अवश्य स्वीकार करना चाहूँगा।' महाभारत की कथा को समझने के लिए पर्याप्त सहायता मिलती है, लेकिन समग्रत: व्यास रचित मूल 'महाभारत' ही मुझे सबसे अधिक प्रभावित करता है।

गोयनका : आपने 'रामायण और महाभारत' के विपुल पात्रों की रचना की है और उन्हें अधिक-से-अधिक मनोवैज्ञानिक बनाने का प्रयत्न भी किया है। क्या इसके लिए आपने 'फ्रायड्' आदि के मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का उपयोग किया है अथवा इन पुरा-कथाओं को पात्रों की मनोरचना को उनके मूल रूप में ही स्वीकार कर लिया है?

कोहली : मैं समझता हूँ कि किसी भी सर्जक साहित्यकार को जीवन को सीधे ही देखना चाहिए। विभिन्न विद्वानों के सिद्धांतों की ऐनक से देखने पर दृष्टि-दोष आ जाता है। उससे हम चरित्रों का सृजन निर्माण नहीं करते, अपने सिद्धातों की प्रतिष्ठा करते हैं जो सर्जक साहित्यकार का नहीं प्रचारक का काम करता है। मैंने मनोवैज्ञानिक तथा मनोविश्लेषण शास्त्रों को उतना ही पढ़ा है जितना वे मेरे पाठ्यक्रम में थे, उससे अधिक पढ़ने की मेरी रुचि इसलिए नहीं हुई कि उनको पढ़कर हम मनुष्य को उसके मन को अधिक नहीं समझते, केवल रोगियों को समझते हैं, अथवा स्वस्थ मनुष्य को रोगी के रूप में चित्रित करने का प्रयत्न करते हैं।

गोयनका : कोहली जी, आपने जैसा कहा कि व्यास की 'महाभारत' ही आपको सबसे अधिक प्रभावित करती है जिसका अर्थ है कि व्यास की पात्र-दृष्टि ही आपने स्वीकार की है, अर्थात् व्यास जिसको उदात्त, उज्ज्वल पात्र मानते हैं, आप भी उसे वैसा ही मानकर चलते हैं, और व्यास जिसे पापी, अधर्मी, कलुषित पात्र मानते हैं, आप भी अपनी कृति में उसी रूप में उसे प्रस्तुत करते हैं। क्या व्यास और आप में ऐसी ही समानता है?

कोहली: गोयनका जी, मैं व्यास की समानता का दावा नहीं कर सकता। उस ऊँचाई तक पहुँचना कथाचित मेरे स्वप्नों के लिए भी सम्भव नहीं है, किन्तु सत्य यही है कि जो चरित्र हम तक पहुँचे हैं, वे व्यास के माध्यम से पहुँचे हैं। इसलिए व्यास की प्रमाणिकता में संदेह करना मेरे लिए उचित नहीं है। मैं उन चरित्रों को न तो खंडित करना चाहता हूँ, न विकृत करना। मैं उनको समझना चाहता हूँ, उनको जानना चाहता हूँ। व्यास के चरित्रों को यह कहकर खारिज नहीं कर सकता कि मैं उनके विषय में व्यास से अधिक जानता हूँ। इसलिए उनका मनमाना सृजन करूँगा, मुझे छद्म क्रान्तिकारिता और सस्ती लोकप्रियता लुब्ध नहीं करती कि मैं उन चरित्रों को समझे बिना उन्हें आधुनिक बनाने के उपक्रम में उनको चारित्रिक विशेषताओं के विरुद्ध खड़ा कर दूँ।

गोयनका : इसका अर्थ है कि पुरा कथाओं का जो उपयोग आधुनिकता के नाम पर हो रहा है, और लेखक अपनी मानसिक विकृतियों को पुरा पात्रों पर आरोपित कर रहे हैं, उनसे आपकी कितनी असहमति है?

कोहली : जिन चरित्रों में जो सम्भावनाएँ हैं, उनका सर्जनात्मक उपयोग करना लेखक की प्रतिभा का चमत्कार है, किन्तु अपनी इच्छानुसार मनमाना आरोपण उतना ही गलत है, जितना वास्तविक विध्वंस। मैं जानता हूँ कि अनेक लेखकों ने अपनी किसी झोंक में कुछ चरित्रों को गौरवान्वित करने और कुछ की अवमानना करने का प्रयत्न किया है। 'मेघनाद वध' काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट हो सकता है, किन्तु अपहरणकर्ता पिता का समर्थन करने वाला पुत्र मेघनाद किसी समाज का नायक नहीं हो सकता। चतुरसेन शास्त्री कितना ही प्रयत्न कर लें किन्तु रावण किसी समाज का आदर्श नहीं हो सकता। दिनकर और शिवाजी सावंत का भावुक प्रवाह अपरिपक्व मस्तिष्क को अपने साथ कितना ही बहाकर ले जाये, किन्तु द्रौपदी को निरवस्त्र करने का आदेश देने वाला कर्ण, शल्य से रुष्ट होकर भद्र स्त्रियों के विषय में अभद्र कथन करने वाला कर्ण कभी स्त्रियों के सम्मान का अर्थ नहीं समझ सकता। इसलिए मैंने कहा कि मैं उन चरित्रों के अन्त:कारण को समझना चाहता हूँ, उन पर बाहर से गुणों और दुर्गुणों का आरोपण करना नहीं चाहता। मैं जानता हूँ कि इससे मुझ पर अमौलिक होने का आरोप लगाया जा सकता है, किन्तु मैं क्रान्तिकारी कहलाने के मोह में सत्य से द्रोह नहीं कर सकता।

गोयनका : कोहली जी, आपकी पुरा कथाओं ने निश्चित रूप से आपको लोकप्रिय बनाया है और देश-विदेश में असंख्य पाठक आपकी कृतियाँ पढ़ रहे हैं, लेकिन क्या इसके लिए, आपकी लोकप्रियता के मूल में 'हिन्दुत्व' के उभार और विकास को उत्तरदायी माना जा सकता है?

कोहली : मैं हिन्दू हूँ और हिन्दू ही रहना चाहता हूँ, इसमें कोई संदेह नहीं है। जहाँ तक कृतियों की लोकप्रियता का प्रश्न है, उसका सम्बन्ध पाठक के लेखक से तादात्म्य से है। प्रेमचंद के पहले उपन्यास के साथ हिन्दी भाषी प्रदेश के लोगों को अपना मन, अपना जीवन, अपना समाज और अपनी समस्याएँ उन कृतियों में दिखायी पड़ी थीं। समय-समय पर इस प्रकार की साहित्यिक घटनाएँ होती रहती हैं। कोई लेखक राजनीतिक आन्दोलनों को दृष्टि में रखकर सृजन नहीं करता, पाठक का स्नेह किस आधार पर मिलेगा, यह तो विज्ञापन एजेन्सियाँ भी नहीं जानतीं, लेखक बेचारा क्या जानेगा, इसलिए अपनी कृतियों की लोकप्रियता के कारणों की खोज का दायित्व मैं आप पर छोड़ता हूँ।

मैं केवल व्यंग्य नहीं लिखता

हरीश नवल

भारत की राजधानी दिल्ली। इसी दिल्ली का एक कॉलेज। नाम राजधानी कालेज। कॉलेज काफी बिखरा-बिखरा सा। लड़के-लड़कियों के दल इधर-उधर फैले हुए हैं। मुख्य भवन में कई कक्ष। एक बड़े कक्ष के बाहर लिखा हुआ- स्टाफ रूम। स्टाफ रूम में अड़ियल, बढ़ियल, दढ़ियल अनेक प्रकार के प्राध्यापक।

अध्यापक चाय पीते हुए। अध्यापक राजनीति पर बहस करते हुए। अध्यापक चुरुट लगाए। अध्यापक कहकहे लगाते हुए। अध्यापक वेतन पर बहस करते हुए। ये आम मध्यवर्गीय पढ़े-लिखे, सभ्य और कह सकते हैं तमीज़दार लोग थे।

इन सबसे परे एक अलग ही किस्म के गंभीर, चिंतक और हमारे प्रिय लेखक डॉ. नरेंद्र कोहली थे। वे मेरे परम मित्र प्रेम जनमेजय के सगे अध्यापक रहे थे। वे मेरे आत्मीय दोस्त जो तब रमेश दिविक थे, के सहकर्मी थे। गलत कह गया मैं। रमेश शर्मा दिविक जो कालांतर में प्रख्यात दिविक रमेश बने और अब एक वर्ष से उसी राजधानी कॉलेज जिसका नाम मोतीलाल नेहरू कॉलेज हो गया था के प्राचार्य हैं।

प्रेम, दिविक और मेरे व्यंग्य सहयात्री सुरेशकांत जो उस कॉलेज में तब छात्र की भूमिका में थे तीनों ही डॉ. नरेन्द्र कोहली के प्रशंसक थे। मैं कॉलेज ऑफ वोकेशनल स्टडीज़ में पढ़ाने लगा था। प्रेम भी वहीं आ गए थे। हम दोनों साथ-साथ, हम दोनों हाथ-हाथ, कभी करते दो-दो हाथ डॉ. नरेंद्र कोहली को मिलने उनके हस्तिनापुर कॉलेज गए थे। मैंने डॉ. कोहली को दूर-दूर से देखा था, उस दिन बेहद पास से उन्हें महसूस किया। उनके पाठक के रूप में उनका बहुत कुछ नज़रों से गुज़रा था पर कभी लेखक से बात नहीं हो पाई थी। उस दिन हुई और प्रेम के गुरु को मैं अपने भी गुरु के रूप में उसी दिन की बातचीत के बाद मानने लगा था। उनका उपन्यास 'साथ सहा गया दुख' मुझे भीतर तक भिगो चुका था। उनकी शोधपरक पुस्तक 'हिंदी उपन्यास:सृजन और सिद्धांत' मेरे शोधार्थी का शमन कर सकी थी। उनकी कहानियां चाव से पढ़ता रहता था। 'निचले फ्लैट' के प्रभाव में रहा था। 'शम्बूक की हत्या' में उनका नाटककार रूप पहचाना जाता था। 'पांच एब्सर्ड' उपन्यास' व्यंग्य शिल्प और शैली के नयेपन से मुझे आंतकित कर चुका था। मैं यदा-कदा श्री गुरुवर डॉ. विजयेन्द्र स्नातक के श्रीमुख से उनकी यशोगाथा के टुकड़े सुन चुका था। मैं राजधानी कॉलेज से तो लौट आया पर डॉ. नरेन्द्र कोहली का व्यक्तित्व दिलो-दिमाग़ पर छाया रहा। उनसे मिलने की उत्कंठा बढ़ती गई।

सन् 1975 में डॉ. कोहली का चर्चित उपन्यास 'दीक्षा' प्रकाशित हुआ था। रामकथा का एक नया आयाम था, दृष्टिकोण वैज्ञानिक एवं अत्याधुनिक था। एक सनसनी-सी फैली थी। उस समय कोहली जी का वर्चस्व एक बड़े व्यंग्यकार के रूप में बन रहा था। व्यंग्य की महात्रयी के बाद के मुख्य व्यंग्यकारों में उनकी गणना हो रही थी। यही वह समय था जब प्रेम जनमेजय, मैं और सुरेशकांत व्यंग्य लेखन के प्रति पूर्णतया समर्पित होने का मन बना रहे थे। दिल्ली से बाहर हमारे समानांतर हरि जोशी,श्रीकांत चौधरी, अंजनी चौहान, ज्ञान चतुर्वेदी, विनोद शंकर शुक्ल, यज्ञ शर्मा, श्रीकांत वैष्णव, प्रकाश पुरोहित, प्रभु जोशी, सुरेश सेठ, मनीष राय, निशिकर आदि प्रतिम रचनाकार जोड़ीदार बन रहे थे। डॉ. नरेंद्र कोहली के साथ-साथ अजात शत्रु, अशोक शुक्ल और सुदर्शन मजीठिया व्यंग्य मार्ग प्रशस्त कर रहे थे। कोहली जी हम सबके प्रेरक थे। परंतु कोहली जी का संस्कृतिचेता उपन्यासकार रूप छाने लगा था। व्यंग्यकार के ऊपर 'दीक्षा' के प्रकाशन से पूर्व पाण्डुलिपि पर चर्चा करते हुए सरोजिनी नगर, नई दिल्ली में एक विशेष गोष्ठी आयोजित की गई। मैं तब तक गोष्ठियों में बोलने का साहस नहीं कर पाता था पर डा. कोहली के आदेशात्मक आग्रह पर मेरा समीक्षक भी सजग हो उठा। मैंने कुछ कहा था। वह रिपोर्ट में भी छपा था। 'दीक्षा' वाचन से मुझे अहसास हो गया था कि एक उल्लेखनीय कृति के रूप में वह याद की जाएगी ऐसा ही हुआ। 'दीक्षा' जबर्दस्त हिट हुई।

डॉ. नरेंद्र कोहली ने मुझे समीक्षक बन सकने की प्रेरणा दी तथा मेरे भीतर के व्यंग्यकार और उसकी रचनाओं को पंख दिए। 'ब्लू स्टार' नामक साइक्लोस्टाइल पत्रिका में उन्होंने मेरी रचना 'दौरा बाढ़ इलाके का' प्रकाशित करवाई। उसी पत्रिका में उनका एक व्यंग्य छपा 'अमेरिकन जामिया' यह रचना मुझे अपने कतिपय मित्रों व पड़ौसी को सभ्य नागरिक का आचरण सिखाने में बेहद कारगर सिद्ध हुई।

डॉ. कोहली दक्षिणी दिल्ली की कॉलोनी 'ग्रेटर कैलाश' के पास एस ब्लाक में रहते थे तथा लगभग नियमित रूप से एक साहित्यिक संगोष्ठी का संचालन करते थे। उनके एक अन्य शिष्य हरिमोहन तथा प्रेम जनमेजय ने एक पत्रिका का संपादन किया था जिसमें मेरी व्यंग्य कथा 'विक्रमार्क बुढ़िया और सराय रोहिल्ला' प्रकाशित हुई थी जिसे पढ़कर डॉ. कोहली ने अपनी संगोष्ठी में 'एक रचनाकार की रचनाएं' में व्यंग्य पढ़ने के लिए आमंत्रित किया। सच कहूं मुझे ढंग से पढ़ना नहीं आता था, उच्चारण का दोष, पंजाबी लहजा व कहां पॉज़ देना है आदि कुछ न आता था। वह गोष्ठी मेरे लिए ऐतिहासिक सिद्ध हुई। विक्रमार्क सहित मेरी कुल सात रचनाएं सुनी गईं तथा सराहना का प्रोत्साहन पुरस्कार मिल सका। तब कोहली जी ने कहा कि अपने प्रथम व्यंग्य संकलन में शीर्षक रूप में 'विक्रमार्क बुढ़िया और सराय रोहिल्ला' ही देना।

उनकी सहधर्मिणी विदुषी डॉ. मधुरिमा कोहली से भी तभी उत्साहवर्धक आशीष मिला था। दोनों मेरी गलतियां सुधारते थे। कोहली जी का स्कूटर थम गया और उन्होंने कार खरीद ली थी। मित्र,शिष्य व अन्यगण मुदित हुए थे। उन्होंने धाम भी बदला। पीतमपुरा वैशाली के अपने प्लॉट में उन्होंने एक शानदार घर बनवाया। खूब खुला, पीछे एक लॉन भी रखा। प्रेम और मैं तब पश्चिम विहार की एक सोसायटी 'साक्षरा अपार्टमेंट' की सदस्यता ले सकने में सफल हुए थे। हम दोनों भी पिता बन चुके थे। डॉ. कोहली ने नए घर में एक आसमानी फव्वारा लगाया था जिससे झरने की तरह नीचे पानी झरता था। हमारे बच्चों ने उसमें मुफत स्नान कर भवन का भीगा-भीगा उद्घाटन कर दिया

था। डॉ. कोहली बच्चो के इस भाव में महामुदित हुए थे। नए भवन में स्टडी ने बहुत आकर्षित किया था। बाद में कम्प्यूटर पदार्पण युग ने डॉ.कोहली को नवतकनीक का सुख प्रदान किया था।

नए भवन में डॉ. नगेंद्र की अध्यक्षता में रचना गोष्ठी की बागडोर डॉ. कोहली ने थाम ली थी। हर बार नई रचनाएं सुनने और सुनाने का सुख प्राप्त होने लगा था। दो तीन रचनाकार रचना पाठ करते और शेष समीक्षात्मक टिप्पणियां देते। मैं, प्रेम और आशा जोशी भी पश्चिम विहार के साक्षरा में रहने लगे थे। वहीं से गोष्ठी में आते और नया लिखने की दीक्षा कोहली जी से प्राप्त करते। पश्चिम विहार से पूर्व मैं लगभग एक वर्ष कोहली जी का पड़ोसी होने का सुख प्राप्त कर सका था। वैशाली की निकटवर्ती विशाखा इन्क्लेव में मैं रहता था जहां स्वयं डॉ. कोहली कई बार पधारकर मुझे और मेरे परिवार को सुख प्रदान कर सके थे।

रामकथा का नरेंद्र कोहली संस्करण बेहद लोकप्रिय हुआ था। उसके अंश देश के प्रमुख पत्र-पत्रकाओं में प्रकाशित हुए थे। डॉ. कोहली का ध्यान तत्पश्चात भगवान कृष्ण की ओर गया। उन्होंने महाभारत का सम्यक अध्ययन किया। उसी विषयक अन्य ग्रंथों से चिंतन, विमर्श के नवपाठ ग्रहण किए और अपनी कृष्ण विषयक सोच के साथ 'महासमर' का धारावाहिक लेखन किया। इसे भी पाठकों ने हाथों हाथ लिया। हमें सौभाग्य मिला महासमर के कतिपय अंशों का प्रकाशनपूर्व वाचन सुनने का, जो डॉ. कोहली की ओजस्वी वाणी से होता था। समीक्षात्मक टिप्पड़ी का आदान-प्रदान इस बार भी था।

डॉ. कोहली सर्वाधिक प्रशंसित नामों में हो गए थे। उनकी रचनाओं ने बिक्री के रिकार्ड बनाए। रायल्टी के रूप में अपना अधिकार ग्रहण करना डॉ. कोहली को प्रिय लगता रहा है। वे इस तथा अन्य मामलों में भी अति स्पष्ट हैं तथा स्पष्टवादी हैं। वे सच्चे निर्भीक और बाहर-भीतर एक से रूप वाले व्यक्ति हैं। वे हिप्पोक्रेट नहीं हैं। वैशाली में जनवरी 1990 में डॉ. कोहली ने अपने पचासवें जन्म-दिन का भव्य आयोजन किया था जिसमें देश के अनेक जाने-माने रचनाकार सम्मिलित हुए थे। डॉ.कोहली को देश-विदेश के बुलावे आते थे। मान-सम्मान, पुरस्कार आदि से उनकी झोली सदैव भरी रही है। वे कभी स्वयं पुरस्कार-योजना नहीं बनाते थे। कभी ऐसा निर्देश उन्होंने मेरे जैसे शिष्यों को दिया। वे एक स्नेही पिता, सहृदय पति, सहनशील पड़ोसी और संस्कृति के जीवंत वाहक हैं।

एक नरेंद्र को जब दूसरा नरेंद्र मिला, नरेंद्र कोहली जी के रचनाधर्मी जीवन में एक नया मोड़ आया। उन्हें मिलने वाला दूसरा नरेंद्र- स्वामी विवेकानंद हैं जिनका जीवनपरक उपन्यास उन्होंने 'तोड़ो कारा तोड़ो' शीर्षक से पाठकों को दिया है। विवेकानंद की कई जीवनियां प्रसिद्ध व प्रामाणिक हैं पर 'तोड़ो कारा तोड़ो' मानों एक चलचित्र है जिसकी आत्मीय शैली विवेकानंद के चरित्र के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन करती हैं। मुझे सबसे अधिक पसंद आता है वह पक्ष जहां युवा नरेंद्र विवेकानंद अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस के प्रति अतुलनीय समर्पण भाव रखते हैं। कहना न होगा यह उपन्यास गुरुवर नरेंद्र कोहली के अपने व्यक्तित्व का भी द्योतक है।

डॉ. नरेंद्र कोहली के साथ चण्डीगढ़, जालंधर, भोपाल, रांची, झांसी, लखनऊ आदि कई जगह जाना हुआ। बाहर की इन यात्राओं में उन्हें पास से काफी जानने का मौका मिला। जो उन्हें ठीक से नहीं समझते वे उन्हें तुनकमिजाज, दम्भी व मूडी समझने का विभ्रम पाल सकते हैं। सांस्कृतिक चेता व्यक्ति जो शुद्धता की कसौटी पर ही तथ्यों, व्यक्तियों और संस्थाओं को तौलता या जांचता हो, कभी-कभी बोर भी लग सकता है। मैंने कई बार यह बोरियत उल्लास से प्राप्त की है।

श्रद्धेय डॉ. कोहली से संदर्भित सभी पुस्तकें एक ओर हैं तथा ईशान महेश की पुस्तक 'सृजन-साधना' दूजी ओर। जिस ओर ईशान है वही पलड़ा भारी है। गुरु के प्रति जैसा समर्पित भाव कोहली जी विवेकानंद में पाते हैं, वैसा ही भाव मुझे ईशान महेश में कोहली जी के प्रति दिखाई देता है। ईशान ने लिखा, 'जिन दिनों मैंने डॉ. कोहली की रामकथा पढ़ी थी, उन दिनों मुझे स्वप्न में राम और विश्वामित्र के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं दिया'। डॉ. नरेंद्र कोहली विश्वामित्र के रूप में दिखाई देते थे, मुख पर असीम शक्तिपुंज लिए और राक्षसों से घिरा मैं उन्हें सहायता के लिए पुकारता था और उनके आने का समाचार पाकर राक्षस-समूह भाग खड़ा होता था। 'अभिज्ञान' और 'महासमर' पढ़ते समय सब कुछ कृष्णमय दिखता था। आज ईशान महेश एक संत सम जीवन व्यतीत कर रहे हैं जिसका समस्त धवलपन उन्हें हमारे गुरु कोहली से ही मिला है कभी ईशान से कोहली जी विषयक बातें हुई थीं जिनमें मैंने जो सीखा, जो जाना उससे कोहली जी का कद मेरी निगाहों में और अधिक बढ़ गया।

उपसंहार

हिंदू कॉलेज की एक साहित्यिक गोष्ठी में मैंने अध्यक्षता कर रहे डॉ. नरेंद्र कोहली को अपने को उनका शिष्य घोषित करते हुए कहा था 'प्रेम जनमेजय अर्जुन की भांति और मैं एकलव्य की तरह हूं। मैंने इतना भर ही कहा था कि उनके गले का भर्राता स्वर मुझे सुनाई देने लगा था, हरीश मुझे द्रोणाचार्य घोषित न करो।'

मैं सन्न रह गया था। सन्न रह जाता हूं। ऐसा निश्छल, सदाचारी, सौम्य और शालीन व्यक्तित्व क्या कभी किसी एकलव्य का अंगूठा मांग सकता है? कदापि नहीं। वह तो शिष्य का हाथ थामने के लिए सदा अपना सबल हाथ बढ़ाता है। बढ़ाता रहेगा। वे विशेष हैं, वे नरेंद्र कोहली नहीं सच में दि नरेंद्र कोहली ही हैं।

आमीन

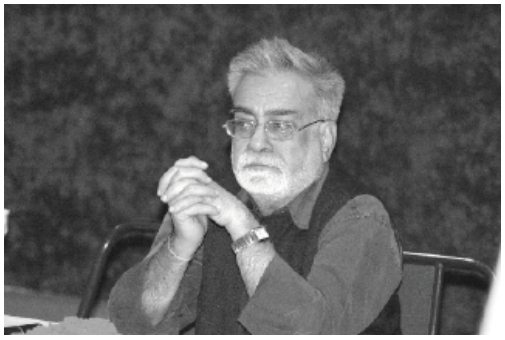

डॉ. कोहली जी विचार मुद्रा में....

साहित्य सागर के अनुपम मोती :
श्रद्धेय नरेन्द्र कोहली जी

राजेन्द्र सोलंकी – कवि

समय के अनन्त विस्तार में हम सभी जैसे एक निश्चित कालखंण्ड के स्वामी बन जीवन के मंच पर एक रंगकर्मी के समान अपनी पात्रता का निर्वाह कर रहे हों। कुछ अज्ञात तो कुछ कालातीत यश के भागी बन करते हैं अपनी चेतना के हस्ताक्षर। साहित्य जगत के ऐसे ही कालजयी साहित्य के यशस्वी रचनाकार हैं आदरणीय कोहली जी। उनके व्यक्तित्व की व्याख्या करना या उनके सृजनात्मकता के आयामों के बारे में कुछ भी लिखना या कहना मेरे लिए बहुत ही दुष्कर सा कार्य है। हमारे जैसे रचनाकारों के लिए वर्तमान में आदरणीय कोहली जी का सान्निध्य, उनका मार्ग दर्शन ही परम सौभाग्य की बात है। कोहली जी के सान्निध्य में बीते कुछ बहुमूल्य, स्वर्णिम क्षणों में उनके व्यक्तित्व की कुछ बातें जो अनुभव में आयीं उनका वर्णन यहां मैं अवश्य करना चाहूंगा।

सबसे पहला उनके बारे में मेरा अनुभव है कि जितने वे पहले - पहल वाणी या व्यवहार से थोड़े कठोर दिखाई देते हैं , कुछ मुलाकातों के पश्चात अत्यन्त सहज , सरल और हृदय से कोमल एवं भावुक अनुभव बिना किसी लाग - लपेट के अस्वीकार या विरोध करने में एक पल की भी देरी नहीं करते। मां हिन्दी के नाम पर किसी प्रकार का समझौता नहीं करना उनकी बड़ी विशेषता है, सामान्य बोलचाल की भाषा में भी वे हिन्दी के शब्दों के प्रयोग पर ज़ोर देते हैं। कोहली जी समय की व्यवस्था का बहुत ध्यान रखते हैं और सम्भवत: इसी में उनके एक बड़े साहित्यकार होने का रहस्य छुपा हो। व्यक्तिगत रूप से जब भी कोहली जी का सान्निध्य प्राप्त होता है ,उनकी वाणी से स्नेह, आशीष , ज्ञान की त्रिवेणी सदैव मन को आनन्दित करती है।

वर्तमान में भाषा , संस्कृति के गिरते स्तर पर उनकी चिन्ता को सहज ही बातचीत में अनुभव किया जा सकता है और सँभवत: इसी कारण उनकी रचनाधर्मिता के मुख्य विषयों में धर्म , संस्कृति से सम्बन्धित विषय प्राथमिकता पर रहे हैं। लेखक की महानता उसके साहित्य सृजन में निहित होती है। पाठकों को कोहली जी के साहित्य के पठन में आनन्द के साथ- साथ पूर्णता का भी अनुभव अवश्य ही होता होगा। हालांकि बहुत कुछ कहना चाहता हूं , किन्तु एक कवि होने के नाते मैंने आदरणीय कोहली जी के प्रति अपनी भावनाओं को काव्य रूप में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है-

जिस भी मानव को जीवन में
माँ वाणी का वरदान मिला
उस ज्ञानयोग के साधक को
जग में शाश्वत सम्मान मिला

डॉ. कोहली इक राजहंस
साहित्य मानसरोवर में
यदि नाम तथोगुण की उक्ति
चरितार्थ हुई है जीवन में

हो व्यंग्य, निबंध,या शोध विधा
नाटक या कहानी, उपन्यास
है लेखन पर अधिकार सहज
ज्यों वर्तमान के वेद व्यास

देकर अतीत को रूप नया
युग को युग से अनुपम बांधा
मिट जाये भ्रम की बाधाएं
निज तप से कालचक्र साधा

हिन्दी साहित्य विधाओं को
निज कृतियों का वरदान दिया
संस्कृति की दिव्य चेतना को
साहित्य साधना दान दिया

वाणी में सरिता सम प्रवाह
भाषाविद और प्रखर वक्ता
साहित्य समीक्षक, आलोचक
या धर्म के कोई अधिवक्ता

उपनिषद , पुराणों , दर्शन का
कृतियों में सार समाहित है
जीवन दर्शन के लेखन में
गीता का ज्ञान प्रवाहित है

हो रामकथा या महासमर
ये दिव्य ग्रंथ सब अभिनव हैं
शब्दों की सूक्ष्म चेतना में
दर्शन विराट के सम्भव हैं

साहित्य सृजन चंदन सुगंध
महका जग ज्यों नन्दन - वन है
साहित्य मनीषी कोहली जी का
कोटि- कोटि अभिनन्दन है

ईश्वर से प्रार्थना करते हैं, श्रद्धेय नरेन्द्र कोहली जी का आशीर्वाद और मार्गदर्शन का सुख हमें निरन्तर प्राप्त होता रहे। 'हिन्दी चेतना' के आगामी अंक को श्रद्धेय कोहली को समर्पित करने के निर्णय के लिए आदरणीय श्याम त्रिपाठी जी और आदरणीया सुधा दीदी को शुभकामनाओं सहित .....

नरेन्द्र कोहली के व्यंग्य पर कुछ नोट्स

- सुभाष चंदर

हिंदी व्यंग्य का इतिहास लिखने के दौरान दसियों हजार रचनाओं को पढ़ने का सौभाग्य मिला। भारतेन्दु, बालमुकुंद गुप्त से लेकर परसाई से होते हुए आलोक पुराणिक तक सैकड़ों व्यंग्यकारों के लेखन से परिचय हुआ। उनके कथ्य और शिल्प को जानने का अवसर मिला। बहुत कुछ अच्छा लगा तो कहीं किसी चीज़ ने मन को कचोटा भी। एक शिकायत जो व्यंग्य का पाठक बनते समय दिमाग में उभरी थी, वह समय के साथ-साथ और शिद्दत से मज़बूत होती गयी। मैं बहुत ईमानदारी के साथ और कुछ दोस्तों की नाराजगी मोल लेते हुए भी कहना चाहूंगा कि हिंदी व्यंग्य में विविधता की बहुत कमी है। शिल्प के स्तर पर भी और कथ्य के स्तर पर भी। एक बंधी-बंधाई परंपरा में एक बने बनाये प्रोफार्मा में व्यंग्य लिखना काफी आसान होता है। ज़्यादा मगजपच्ची भी नहीं करनी पड़ती। इस 'आसानी' का व्यंग्यकारों के एक बड़े वर्ग ने काफी लाभ उठाया है। यही कारण है कि हिंदी व्यंग्य के एक बड़े हिस्से से बासीपन की बू आती है। इसी के आगे, यह भी सच है कि जिन रचनाकारों ने इस परम्परावादी मानसिकता को बदलने की कोशिश की, व्यंग्य के सरोकारों और उसकी पठनीयता को बरकरार रखते हुए, शिल्प और कथ्य के स्तर पर नए प्रयोग किए, बकौल ज्ञान चतुर्वेदी ने इन क्षेत्रों में नई जमीन तोड़ी। वे व्यंग्यकार भीड़ से अलग अपनी पहचान बनाने में समर्थ हुए। तथा कथित कालजयी व्यंग्य का एक बड़ा हिस्सा भी इन प्रयोगों के माध्यम से ही आया।

अब बात नरेंद्र कोहली के व्यंग्य की। मुझे यह कहने में कतई गुरेज नहीं है कि कथ्य और शिल्प दोनों ही स्तरों पर जितना वैविध्य कोहली जी के यहां मिलता है, उतना अन्यत्र कम ही मिलता है। बमुश्किल पांच-सात व्यंग्यकार ही ऐसे हैं जिन्होंने व्यंग्य की जमीन पर वैविध्य की ऐसी शानदार खेती की है। वरना तो कथ्य के स्तर पर वही राजनीति, उससे कुछ बचा तो प्रशासनिक और शैक्षिक विसंगतियां, साहित्यिक, सांस्कृतिक विद्रूपों पर थोड़ी बहुत निशानेबाज़ी और बस हो गया व्यंग्य लेखन।

नरेंद्र कोहली ने जीवन के हर क्षेत्र की विसंगतियों को अपने व्यंग्य का केन्द्र बनाया है। राजनीति तो उनके व्यंग्य का प्रतिपाद्य है ही, साहित्यिक खेमेबाजी, सांस्कृतिक अवमूल्यन, भारतीय समाज की - यथास्थितिवादी प्रवृत्ति, प्रशासनिक तंत्र का खोखलापन, धार्मिक अंधविश्वास सभी पर उनकी कलम चली है और बहुत धारदार ढंग से चली है। विशेषकर भारतीय समाज में व्याप्त मूल्यहीनता और असंवेदनशीलता पर तो उन्होंने तेज़ाबी लेखन किया है। गंभीर प्रवृत्ति की मारक रचनाएं उनके खाते में सैंकड़ों की संख्या में हैं। उनके व्यंग्यकार की सबसे बड़ी खूबी यह है कि वह विसंगति के चुनाव में बेहद सतर्कता से काम लेता है; कम ही बार ऐसा हुआ है जब उन्होंने विसंगति चयन में शिथिलता बरती है, ऐसी असावधानी कई बार उनके व्यंग्य स्तम्भों में अवश्य देखने में आई है। विसंगति के सही चुनाव के बाद वह उनके मर्म तक पहुंचते हैं और फिर भाषिक शक्तियों के प्रयोग द्वारा उन पर करारी चोट करते हैं। ऐसी चोट कि पाठक पढ़े और अंदर तक तिलमिला जाए। यही शुद्ध व्यंग्य की पहचान भी है और व्यंग्य लेखन का प्रयोजन भी।

अब बात नरेंद्र कोहली के समग्र व्यंग्य पर। कोहली जी ने कहानी, निबंध, उपन्यास और नाटक चारों ही विधाओं का व्यंग्य के माध्यम के रूप में सफलता पूर्वक प्रयोग किया है। इन सभी में उन्होंने शिल्प के स्तर पर अभिनव प्रयोग किए हैं। बल्कि यह कहना भी गलत नहीं होगा कि वे उन बिरले रचनाकारों में से हैं जिनकी 90 प्रतिशत से भी अधिक रचनाओं में शिल्प का दोहराव नहीं है। कथ्य और शिल्प के स्तर का यही नयापन नरेंद्र कोहली को नरेंद्र कोहली बनाता है। कुछ अपवाद छोड़ दिए जाएं तो नरेंद्र कोहली का व्यंग्य बैठे-ठाले या सिर्फ लिखने के लिए लिखा गया व्यंग्य नहीं है, वह शोषण के प्रतिकार के रूप में उपजा आक्रोश है जो व्यंग्य के रूप में अभिव्यक्त होता है। युगबोधक दृष्टि, सूक्ष्म विश्लेषण और तीव्र मारकता उसे विशिष्ट बनाती है।

कोहली जी के समग्र व्यंग्य पर बात करने के लिए मैं क्रमिक रूप से उनके व्यंग्य नाटक, व्यंग्य कथा, व्यंग्य उपन्यास और व्यंग्य निबंध पर बात करना चाहूंगा। पहले बात व्यंग्य नाट क की। 'शम्बूक की हत्या' 1974 ई. में उनकी कलम से निकली महत्वपूर्ण व्यंग्य कृति है, जिसमें उन्होंने पौराणिक कथा सूत्रों को आधुनिक रूप देते हुए अव्यवस्था की शल्य-चिकित्सा करने की कोशिश की है। 'शम्बूक की हत्या' के मूल में प्रशासनिक विसंगतियों पर प्रमुख रूप से चोट की गयी है, लेकिन साथ ही राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विद्रूपों की भी पड़ताल की गयी है। रामायण के 'राम-शम्बूक प्रसंग' से प्रतीकात्मक रूप में उठाई गयी इस नाट्य कृति में एक ब्राह्मण अपने पुत्र की मृत्यु से विचलित होकर न्याय दिलाने निकलता है। देश की राजधानी दिल्ली में वह भ्रष्टाचार, अमानवीयता, पूंजी व्यवस्था की कुरूपता आदि इतने विद्रूपों से दो-चार होता है कि न्याय पाने की आस ही छोड़ बैठता है। पाठकीय नाटक की दृष्टि से यह बेहद महत्वपूर्ण कृति है। इसमें फैंटेसी का अद्भुत प्रयोग, मानवीकरण, प्रतीकात्मकता और शब्द शक्तियों विशेषकर वक्रोक्ति और कटूक्ति का संयोजन विशेष रूप से दृष्टव्य है। अपने सरोकारों की गंभीरता और तीव्र प्रहारात्मकता के कारण यह रचना व्यंग्य नाटकों के क्षेत्र में मील का पत्थर है।

नरेंद्र कोहली के व्यंग्य कथा साहित्य की बात करें तो मैं कहना चाहूंगा कि व्यंग्य कथा के क्षेत्र को समृद्ध करने में उनका बहुत बड़ा योगदान है। परसाई जी के बाद कदाचित सर्वाधिक

व्यंग्य कथाएं उन्हीं के पास हैं। कबूतर, कैनोपी का स्वयंवर, अमरीकन जांघिया, अनागत, ब्लड बैंक की अप्सरा जैसी सैंकड़ों श्रेष्ठ व्यंग्य कथाओं से उनका खजाना भरा हुआ है। उनकी व्यंग्य कथाओं की सबसे बड़ी विशेषता है उनका कथ्य। कथ्य का जितना वैविध्य उनकी व्यंग्य कथाओं में मिलता है, ऐसा कम ही देखने में आता है। उनकी अधिकांश व्यंग्य कथाएं गंभीर सरोकारों को साथ लेकर चलती है। 'अमरीकन जांघिया' जहां भारतीयों के हीनताबोध पर प्रहार करती है तो 'कबूतर' सांस्कृतिक शून्यता पर। 'कैनोपी का स्वयंवर', 'अनागत' सामाजिक विद्रूपों की शल्य चिकित्सा करती है। सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, मानवीय सभी क्षेत्रों के विद्रूपों की वह कहीं बहुत गहरे में जाकर पड़ताल करते हैं और शब्द-शक्तियों के सधे हुए प्रयोगों द्वारा उन पर शर-संधान करते हैं। उनकी व्यंग्य कथाओं के शिल्प की बात करें तो इसमें कहीं-कहीं ही पुनरावृति दिखाई देती है, अन्यथा हर बार कथ्य के अनुरूप नया शिल्प संयोजन है। यही उनके व्यंग्य कथाकार को अलग पहचान देता है। प्रसंगवक्रता पर उनकी जबर्दस्त पकड़ है, पर प्रभाव को बढ़ाने के लिए वह उसी पर आश्रित नहीं रहते। अपितु वाग्वैदध्य, वक्रोक्ति और कटूक्ति जैसी भाषिक शक्तियों के अभिनव प्रयोग द्वारा रचना की गुणवत्ता में वृद्धि करते हैं। हास्य उनकी रचनाओं में कम ही मिलता है। हास्यरहित व्यंग्य कथा की सफलता को देखने के लिए नरेंद्र कोहली की व्यंग्य कथाओं से रू-ब-रू हुआ जा सकता है।

औपन्यासिक ढांचे में कोहली जी की दो कृतियां हैं 'आश्रितों का विद्रोह' और 'पांच एब्सर्ड उपन्यास' 1973 में प्रकाशित 'आश्रितों का विद्रोह' ने राग दरबारी के बाद के व्यंग्य उपन्यासों के खालीपन को भरने की सार्थक कोशिश की। शिल्प के स्तर पर यह कृति बहुत प्रभावी नहीं है लेकिन अपनी जनोन्मुखता, युगबोधक दृष्टि और तीव्र प्रहार क्षमता के कारण विशेष उल्लेखनीय है।

'पांच एब्सर्ड उपन्यास' उनकी अद्भुत औपन्यासिक कृति है। कथ्य के स्तर पर और शिल्प के स्तर पर भी। विशेष रूप से इसकी 'अस्पताल' नामक रचना तो अद्भुत है। मेरी दृष्टि में यह गंभीर व्यंग्य हास्यरहित व्यंग्य की सर्वश्रेष्ठ कृति है। श्रीलाल शुक्ल जिस प्रकार 'राग दरबारी' के लिए जाने जाते हैं, उसी प्रकार यह कृति पाठकों को नरेंद्र कोहली को कभी भूलने नहीं देगी। अस्पतालों में फैली अकर्मण्यता और संवेदनहीनता पर यह कृति बेहद तीखा प्रहार करती है, इतना तीखा कि इस रचना को पढ़ने के बाद पाठक लंबे समय तक तिलमिलाता रहता है। इस रचना को पढ़ने के बाद कई घंटों तक कुछ और पढ़ पाना संभव नहीं हो पाता। शिल्प के स्तर पर भी यह कृति अद्वितीय है। वक्रोक्ति , शुष्क हास्य और कटूक्ति का अभिनव प्रयोग इस रचना को अति महत्वपूर्ण बनाता है। इस कृति के शेष चार एब्सर्ड उपन्यासों में 'कॉलेज' अपनी शिल्पगत नवीनता के कारण कहीं अधिक प्रभावित करती है। और अंत में बात नरेंद्र कोहली के व्यंग्य-निबंधों की। सच कहूं तो कोहली जी के व्यंग्य-नाटक, व्यंग्य-कथाओं और व्यंग्य-उपन्यासों की तुलना में उनका यह पक्ष बहुत अधिक प्रभावित नहीं करता। कथ्य और शिल्प के स्तर पर उन्होंने इस रचनाकर्म में भी विशिष्ट प्रयोग किए हैं। विषय भी अपेक्षाकृत गैर परम्परागत और नवीन है। उनका फलक विस्तृत है। वक्रोक्ति, वागदैग्ध्य और किंचित हास्य की भी छटा बिखेरते हैं, पर कहीं-कहीं पाण्डेय बेचैन शर्मा 'उग्र' की भांति उनका 'सात्विक आक्रोश' उबल पड़ता है जिससे कई बार सपाट बयानी की स्थिति भी आ जाती है। सच तो यह है; मेरी स्मरण शक्ति खराब भी हो सकती है इस समय उनके किसी व्यंग्य निबंधों का शीर्षक भी याद नहीं आ रहा। वास्तविकता यह है कि इसे आप एक पाठक की हठोधर्मी समझ लें या कुछ और मैं व्यक्तिगत रूप से कोहली जी के व्यंग्य-कथाकार, व्यंग्य - उपन्यासकार रूप का ही प्रशंसक हूं।

अब चलते-चलते एक बात और. . .नरेन्द्र कोहली हमारे समय के बहुत बड़े रचनाकार हैं, बल्कि परसाई युग की 'चौकड़ी' को पंचकड़ी में बदलने की क्षमता रखने वाले। वैसे भी जब हम 'राग दरबारी' के कारण श्रीलाल जी को इस चौकड़ी में रखते हैं तो 'अस्पताल' जैसी विश्व साहित्य की दुर्लभ कृति के बाद नरेंद्र कोहली को दूर रखना कितना न्यायसंगत है। अगर उन्होंने रामकथा, कृष्ण कथा, विवेकानंद कथा आदि का सर्वश्रेष्ठ लेखक बनने की 'गलती' कर ही दी है तो क्या हम उन्हें उनका यथोचित सम्मान नहीं देंगे. . .बस इतना ही। शेष फिर

Hindi Chetna is a literary magazine published quarterly in Toronto, Ontario under the editorship of Mr. Shiam Tripathi. Hindi Chetna aims to promote the Hindi language, Indian culture and the rich heritage of India to our children growing in the Canadian society. It focuses on Hindi literature and encourages creative writers, young and old, in North America to write for the magazine. It serves to keep readers in touch with new trends in modern writing. Hindi Chetna has provided a forum for Hindi writers, poets and readers to maintain communication with each other through the magazine. It has brought many local and international writers together to foster the spirit of friendship and harmony.Hindi Chetna is a literary magazine published quarterly in Toronto, Ontario under the editorship of Mr. Shiam Tripathi. Hindi Chetna aims to promote the Hindi language, Indian culture and the rich heritage of India to our children growing in the Canadian society. It focuses on Hindi literature and encourages creative writers, young and old, in North America to write for the magazine. It serves to keep readers in touch with new trends in modern writing. Hindi Chetna has provided a forum for Hindi writers, poets and readers to maintain communication with each other through the magazine. It has brought many local and international writers together to foster the spirit of friendship and harmony.

सामाजिक संदर्भ

डॉ. शशि मिश्र

आजाद देश की आजाद मानसिकता ने समाज-जीवन में साम्प्रदायिकता, द्वेष, ईर्ष्या, अन्याय, अत्याचार का जो जहर घोला, उसकी प्रतिक्रिया में प्राय: प्रत्येक सचेत साहित्यकार व्यंग्य-रचना करने को विवश हुआ है। प्रतिक्रियात्मक अभिव्यक्ति वाले इन साहित्यकारों का विवादास्पद बनना भी स्वाभाविक ही था। एक ओर स्वाधीन देश की चेतना सदियों की गुलामी एवं गुलामीयुक्त प्रतिबंधों को तोड़ फेंकने को उत्सुक थी तो दूसरी ओर भ्रष्ट व्यवस्था के पक्षधर भी कम नहीं थे। इस तरह आजादी के बाद इस देश की दोहरी मानसिकता एवं दोहरे मानदण्डों ने पूर्व निर्धारित मानव-मूल्यों, नीति एवं संस्कृति,सभी पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। भोली-भाली अशिक्षित जनता जितनी ही दिग्भ्रमित होती गयी, सत्तालोलुप धूर्त नेता उतने ही क्रूर एवं अमानवीय बन गए।

भारतीय जीवन का यह वैषम्य उत्तरोत्तर विकराल होता गया। व्यक्ति के रूप में समाज-जीवन के इस वैषम्य को नरेंद्र कोहली जैसे साहित्यकार अनुभव करते हैं। उनकी लेखकीय सर्जक चेतना इन अनुभूतियों का साधारणीकरण करती है। लेखन-प्रक्रिया को समझाते हुए कोहली कहते हैं कि लिखते समय लेखक के सामने साधारणीकरण अथवा तादात्म्य की समस्या रहती है- 'जो उसके लेखक के मन में है, उस बात को वह पाठक के मन में उतार देना चाहता है।'

वैयक्तिक धरातल पर कोहली की चेतना विसंगतियों एवं विद्रूपताओं का साक्षात्कार करती रही है। 'पांच एब्सर्ड उपन्यास' की भूमिका में आत्मकथ्य करते हुए वह कहते हैं 'जब तक सह सकता था सहा, पर जब सह न सका तो मैं व्यंग्य पर उतर आया। पीड़ा ने ही मुझे अपने से कुछ बड़ा कर दिया था और ऐसी आंख दी थी जिसने उस सारे वातावरण को एक कार्टून की दृष्टि से देखा था। और यह सब शायद इसलिए हुआ था ताकि मैं अपना मानसिक संतुलन स्थिर रखकर जी सकूं ।'

मानवीय जिजीविषा व्यक्तित्व के अनुरूप हर किसी को जीवन-शक्ति प्रदान करती है। मनुष्य समाज को व्यंग्यकारों के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए कि मारक परिस्थितियों के बीच, ये जीवन-सम्बल प्राप्त करते हुए मानवीय उदात्तता का स्तुत्य प्रयास करते हैं।

कोहली के आत्मकथ्य की यह दारुण व्यथा किसी भी सहृदय व्यक्ति की चेतना के मर्म को झकझोरने में सक्षम है। ऐसे क्षणों में ही सहृदय पाठक लेखकीय सह-अनुभूति द्वारा सम्बल प्राप्त करता है और जीवन को नष्ट होने से बचाने का प्रयत्न करता है।

व्यंग्यकारों की यह चेतना हमें परिवेशगत क्षुद्रताओं से ऊपर उठाती है और हम उन अनेक लोगों के प्रति समभाव तथा संवेदना की अनुभूति से भर उठते है, जो हमारी ही तरह त्रासद विसंगतियों में दम तोड़ रहे होते हैं। करुणा की यह अजस्र धारा व्यंग्यकारों के ही सामर्थ्य की बात है। विषम परिवेश के प्रति परिहास, विनोद अथवा तिरस्कार की अपेक्षा कोहली की पीड़ित दृष्टि सामाजिक, राजनीतिक विद्रूपताओं के तह में जाती है 'पीड़ित आक्रोश की वक्रता ने जो दृष्टि दी, उसने अपने व्यक्तिगत अनुभवों से बाहर निकल राजनीतिक-सामाजिक असंगतियों को भी देखा और अपने पीड़ित आक्रोश को व्यक्त करने के लिए मैं व्यंग्य रचनाएं लिखता रहा।'

परसाई की व्यंग्य रचनाओं में व्यंग्य-संस्कार प्राप्त करने वाले कोहली का व्यंग्य भी मानवीय करुणा का ही श्रेष्ठतम रूप है। शोषक एवं शोषित के द्वंद्व में कोहली की करुणा शोषितों का साथ देती है क्योंकि वे असमर्थ हैं।

'जो दलित और जो शोषित वर्ग हैं, सर्वहारा हैं, उनकी विसंगतियों के प्रति करुणा अधिक होती है क्योंकि वे समर्थ नहीं हैं। ऐसे में कटाक्ष करने के पहले हम सोचेंगे कि क्या यह दोषी है? यह देखेंगे कि मूल कारण कहां है?'

इन पंक्तियों को पढ़ते हुए वात्सल्यपूर्ण ममता सहज ही याद हो जाती है। दुर्बल, अस्वस्थ बच्चे के प्रति मां का अतिरिक्त लगाव जितना सहज एवं स्वाभाविक होता है, व्यंग्यकारों की करुण चेतना भी उतनी ही सहज एवं स्वस्थ है। शोषकों के प्रतिकार के लिए शोषितों को चेतना-सम्पन्न सामर्थ्य प्रदान करना ही उनका अभीष्ट है। वैयक्तिक पीड़ा के सोपानों को पार करते हुए वे सामाजिक दृष्टि का निर्माण करते हैं। इस कार्य हेतु पहले अपने ही घावों की शल्यक्रिया करनी पड़ती है, क्योंकि स्वयं को स्वस्थ बनाए बिना दूसरों का उपचार संभव नहीं। कोहली इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए कहते हैं-

'जीवन की अनेक विभीषिकाओं का साक्षात्कार हुआ। उसने मन को जो पीड़ा दी, उसकी असहायता ने मेरे व्यक्तित्व की वक्रता को पुन: मुखरित कर दिया और स्वयं को हल्का करने के लिए व्यक्तिगत अनुभवों पर मैंने कटाक्ष किए। अपनी पीड़ा का ही परिहास किया। अपने घावों को छील-छीलकर स्वयं को रुलाया।'

कोहली का रुदन आत्म-कुंठा का रुदन नहीं था बल्कि परिस्थितियों की विवशता एवं अपनी असहाय स्थिति की वक्रता

का रुदन था। यह असहायता व्यवस्थागत असहायता थी। अत: कोहली का चेतन मन इस भ्रष्ट व्यवस्था के प्रति क्रोध व्यक्त करता है - 'जैसे-जैसे जिंदगी की समझ ज्यादा आई परिस्थितियां विसंगतिपूर्ण होती गयीं, वैसे-वैसे व्यंग्य ज्यादा प्रखर और तीखा होता गया और उसकी तरफ रुचि भी बढ़ती गयी।'

जानलेवा विसंगतियों के प्रति कोहली के मन ने प्रतिक्रिया की। वास्तव में आत्मपीड़ा के क्षणों में उनके मन ने व्यवस्था के विरुद्ध गन्दी गालियां दी थीं किंतु साहित्य गालियों को हू-बहू स्वीकार नहीं करता, अत: वह अपने आक्रोश को सात्विक, सृजनशील तथा कलात्मक आक्रोश बनाते हैं जो व्यंग्य के रूप में प्रस्फुटित होता है-

'आक्रोश सात्विक और ईमानदार न हो तो रचना झूठा प्रचार हो जाती है, और सृजनात्मकता की कमी हो तो रचना गाली-गलोच बनकर रह जाती है।'

इसी तरह 'एक और लाल तिकोन' की व्यंग्य रचनाओं की चर्चा करते हुए कोहली कहते हैं- 'वे वैयक्तिक अथवा सामाजिक परिस्थितियां, जिन्होंने मुझसे यह सब लिखवाया, अगंभीर हुईं, जब कभी विसंगतियों ने यह रूप धारण किया, तभी कोहली ने व्यंग्य रचनाएं कीं। एक के बाद एक झकझोरने वाले अनुभवों ने कोहली को वैयक्तिक धरातल पर हास्य एवं रुदन दोनों ही अनुभूतियां दीं। कोहली ने इन अनुभूतियों का विस्तार किया तथा सामाजिकों की अनुभूति को समझने का सामर्थ्य प्राप्त किया। अपने अनुभवों का दान समाज को दिया, समाज के अनुभवों को आत्मसात किया और फिर उन्हें व्यंग्य के रूप में समाज-जीवन को ही अर्पित करने में कोहली लगे हुए हैं।

विभिन्न शिल्पों में व्यंग्य रचना करने वाले कोहली व्यंग्य के मूल व्यक्तित्व को न्यायसंगत आक्रोश मानते हैं- 'जिस व्यक्तित्व के कारण व्यंग्य विधा बनती है, वो है आक्रोश जिसे नागार्जुन ने क्षोभ कहा है। न्यायसंगत आक्रोश को जब कलात्मक रूप में अभिव्यक्त किया जाता है, तो वह व्यंग्य बनता है।'

व्यंग्य रचना की बारीकी को समझाते हुए कोहली जी स्वीकार करते हैं कि अप्रिय, अनुचित अथवा गलत घटना के कारण मन में आक्रोश उठता है। उस घटना अथवा वस्तु के विरुद्ध मन में कटाक्ष उभरते हैं। इन कटाक्षों की कड़ी ही व्यंग्य के रूप में आ जाती है। साधारणजन भी कटाक्ष करते ही हैं। किंतु रचनाकारों का कटाक्ष एकमात्र विध्वंस प्रेरित नहीं होता, न ही बदले की भावना उनमें होती है। वे तो समाज के स्वस्थ निर्माण संबंधी सृजनशील तनाव से घिरे होते हैं। आसपास की विसंगतियां एवं आंतरिक प्रतिक्रियां दोनों ही रचनाकार के भीतर उधम मचाते हैं। इन तनावों से मुक्त होने के लिए वह लेखन का सहारा लेता है, 'व्यंग्य जो है, वह एक टेंशन का पर्याय है और उस टेंशन को आदमी का दिमाग बहुत दूर तक वहन नहीं कर पाता।' अत: वह भीतरी टेंशन को कसाव पर उतारता है, अपना विरेचन करता है, सामाजिकों का साथ प्राप्त करता है और सामयिक मुक्ति प्राप्त करता है। प्रत्येक लेखन के मूल में कोहली इसी मुक्ति कामना एवं सह-अस्तित्वबोध को मानते हैं। भीतरी छटपट ाहट एवं बेचैनी ही कागज पर अभिव्यक्त होती है। किंतु इस अभिव्यक्ति की प्रेरणा होती है।

कोहली का विश्वास सामाजिक आदान-प्रदान में है। वह जिस तरह अपने दुखों का साधारणीकरण करते हैं, उसी तरह दूसरों के दुखों को अंगीकार भी करते हैं। आज का जीवन द्वंद्वात्मक आत्म-संघर्ष का जीवन है। चारों ओर अभूतपूर्व मुर्दनी छायी हुई है। लोगों की प्रतिक्रिया शक्ति सुप्त है। यह सामूहिक जड़ता गिने-चुने जागरूकों की प्रतिक्रिया पर हावी है। तथापि, कतिपय सृजनधर्मी साहित्यकार जन-जागरण का नेतृत्व करते ही हैं- 'कुछ अनुचित, अन्यायपूर्ण अथवा गलत होते देखकर जो आक्रोश जागता है। वह यदि काम में परिणत हो सकता तो अपनी असहायता में वक्र होकर जब अपनी तथा दूसरों की पीड़ा पर हंसने लगता है तो वह विकट व्यंग्य होता है, पाठक के मन को चुमलाता-सहलाता नहीं, कोड़े लगाता है, अत: सार्थक और सशक्त व्यंग्य कहलाता है।'

पाठकों की चेतना को झंकृत करने के प्रयास में कोहली देश की आत्मा को खोलकर रखते हैं। आजादी के बाद इस देश के आंतरिक रूप से क्या-क्या घटित होता रहा है, व्यक्ति के निजी व्यवहार से लेकर सामूहिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व्यवहार के दोमुंहेपन को कोहली के व्यंग्य निबंधों में अपने नग्न रूप में देखा जा सकता है। संस्कृत के व्यंजनागर्भ व्यंग्य की तुलना में आधुनिक व्यंग्य का पार्थक्य, परिवेश की असंगतियों में ही है- 'यह स्थितियों की ही विसंगतियां हैं कि आप उन स्थितियों को सीधा-साधा लिख दें- अविधा में, तो भी वह कटाक्ष हो जाता है क्योंकि वहां गलत हो रहा है। इसलिए संस्कृत-काव्यशास्त्र के लोग जहां व्यंग्य को व्यंजना से ही जोड़ते हैं, वहां हम बताते हैं कि नहीं साहब, यहां व्यंजना में नहीं, यहां तो अभिधा में भी हो रहा है।'

अभिधागत व्यंग्य कोहली की व्यंग्य विषयक धारणा का विस्तार करता है। हिन्दी साहित्य के रीतिकाल तक व्यंग्य को वह एक शब्द-शक्ति, अन्योक्ति, वक्रोक्ति अथवा समासोक्ति जैसे अलंकार के रूप में देखते हैं किंतु आधुनिक संदर्भों से उपजे व्यंग्य के लक्षणों का निर्धारण करने हेतु शास्त्रकारों की मांग करते हैं। किसी भी विधा का निर्णायक तंत्र कोहली के अनुसार साहित्यकार के व्यक्तित्व का मूल तंत्र होता है। व्यंग्य के संदर्भ में वह साहित्यकार के सात्विक सृजनशील तथा कलात्मक वक्र आक्रोश को मानते हैं। स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी काव्य-साहित्य की चर्चा करते हुए वे कहते हैं- 'हिंदी के व्यंग्य-साहित्य को देखें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि स्वतंत्रता के बाद से सामाजिक-राजनीतिक असंगतियों के कारण भारतेन्दु युग के बाद व्यंग्य का टूटा हुआ सूत्र न केवल फिर से पकड़ा गया, वरन् नवीनता और निखार के साथ दृढ़ किया गया। 'व्यंग्य संकलन' के नाम से जो पुस्तकें आयीं, उनमें ऐसे व्यंग्यात्मक निबंध थे जो न तो निबंध की परम्परागत परिभाषा में आते हैं, न कहानी की।'

स्वातंत्रयोत्तर भारत में एक साथ पनप रहे मानवीय गुण एवं अमानवीय क्षुद्रताओं, पूंजीवादी क्रूरता एवं जनवादी प्रतिबद्धता को कोहली के व्यंग्य-निबंधों में आसानी से देखा जा सकता है। कोहली की आरंभिक रचनाएं, उनके निजी परिवेश एवं वैयक्तिक अनुभूतियों का दस्तावेज हैं, जबकि बाद की रचनाएं व्यक्तिगत जीवन के साथ-साथ राष्ट्रीय जीवन के अनेकानेक विसंगत उपादानों से उद्घृत हुई हैं। व्यक्तिगत जीवन की पीड़ा

तथा राष्ट्रीय जीवन की तर्कशून्य विद्रूपपूर्ण स्थितियों ने कोहली को भीतर तक आंदोलित किया है 'अति संवेदनशीलता की स्थिति में मैंने अपने समाज और देश में फैले हुए उस आतंक का अनुभव किया, जिसके मूल में राजनीतिक सत्ता थी। बात यहीं तक समाप्त नहीं हो गयी। मैंने अपनी कल्पनाशीलता में उस समाज का निर्माण किया जो इस सारी व्यवस्था का विरोध करता है और तब यह भी महसूस किया कि यदि कभी सत्ता का विरोध हुआ तो उसका दमन कब और कैसे होगा?'

वैयक्तिक अनुभूतियों के तटस्थ विश्लेषण ने कोहली को जो दृष्टि दी, वह उनके स्वयं के लिए आश्चर्य की वस्तु है- 'मेरे व्यक्तित्व में से कभी-कभी किन्हीं कारणों से व्यंग्य का तंत्र ऐसा छन जाता है कि उसकी ओर ध्यान खींचा जाने पर मुझे स्वयं आश्चर्य होता है।'

अपनी पीड़ा के ताप में तपकर कोहली सांसारिक पीड़ा एवं मानवीय छटपटाहट की अनुभूति प्राप्त करते हैं। उनकी संवेदना विस्तृत होती है तथा वह 'स्व' से निकल 'सर्व' तक पहुंचते हैं। यह कोहली का आत्म-विस्तार है जहां परिवार, समाज,राष्ट्र ,स्वजन, सभी अपनी सीमाएं लांघ चुके होते हैं और सहज मानवीय संकेत अथवा अनुभूति शेष होती है। यही वह स्थिति है जहां लेखक अन्य सामान्य लोगों से हटकर विशेष की श्रेणी में आ जाता है। सम्पूर्ण विश्व की घटना उसकी अपनी घटना होती है, प्रत्येक की प्रतिक्रिया, राग-अनुराग, द्वेष उसका अपना राग-अनुराग अथवा द्वेष होता है। कोहली के व्यंग्य-निबंध इन्हीं राग-अनुराग एवं करुणा के व्यंग्य-निबंध हैं जो राग-द्वेष के कारणों की समझ देते हुए जीवन को समझने की दृष्टि देते हैं। प्रशासनिक व्यवस्था के दोमुंहेपन का ज्ञान कराते हैं। साहित्य, समाज, धर्म, दर्शन तथा अर्थतंत्र की गुत्थियां उघाड़कर सामने रख देते हैं। चेतना सम्पन्न सजग जनता इनके प्रति शंकित हो उठती है। उसे समझ आ जाता है कि बाहर से दीखने में यह व्यवस्था जितनी ईमानदार नजर आती है, अंदर से उतनी ही भ्रष्ट है। कारण, यहां की जनता की अज्ञानता, अशिक्षा है। प्रजातांत्रिक व्यवस्था प्रत्येक नागरिक से राजनीतिक सूझ की अपेक्षा करती है जबकि यहां की अधिकांश जनता आज भी आधारभूत शिक्षा से विहीन है। ज्ञान-विज्ञान के उत्कर्षकाल में भी जन-सामान्य का जीवन, हृदय-संचालित है। यह हृदयगत भावनाओं की ही प्रबलता है कि शासन का छद्म उसे छद्म नहीं लगता बल्कि वह उसके बाहरी क्रियाकलापों, कर्मकाण्डों एवं पाखंडों के जाल में ही उलझकर रह जाता है। ऐसे सम्मोहित जनता को कोहली सत्य का आलोक देता है-

'हाय! कलियुग में राजधर्म का पालन करने वाला कोई नहीं रहा। बनाता कोई नहीं, उजाड़ सब रहे हैं।'

लोगों की इस संस्कारहीनता, कोरी सिद्धान्तवादिता, अव्यावहारिक आदर्श को कोहली 'संतों की बिल्लियां और चूजे' नामक निबंध में व्यंग्यात्मक बाना पहनाते हैं। धर्म, दर्शन और संस्कृति के क्षेत्र में अपने आपको विश्व-गुरु मानने वाला यह देश वैज्ञानिक युग के आते-आते कंगाल ही नहीं, कंगाल-शेष होकर रह गया कारण खोखली आदर्शवादिता और खोखला अहम्। युगधारा अग्रगामी है जबकि हम अतीत के मोह से चिपके हुए हैं। प्राचीन युग से ही इस देश की परम्परा चली आ रही है कि लोग अपने हाथों में सिद्धान्तों की हथकड़ियां डाल सब कुछ नष्ट होता देखते रहते हैं :

'सारा देश बस वचनों ही वचनों पर चल रहा है। भाषणों की खेती होती है, कारखानों में भाषण बनते हैं। सारा देश भाषण खाता, भाषण पहनता-ओढ़ता है और भाषणों के मकान बनाकर रहता है। लबाड़ियों का देश है,भाषणों-वचनों-आश्वासनों से काम चल जाता है।' व्यंग्य एवं व्यंग्यकारों की यही उपादेयता है। राजनीति एवं बुद्धिजीवियों का यही द्वंद्व है, धर्मयुद्ध है। राजनीति ।टुच्चे स्वार्थों के कारण जनता को गुमराह करती है जबकि व्यंग्यकार ऐसी गुमराह जनता को टुच्चेपन से उबार विशाल एवं व्यापक दृष्टि देते हैं, मानवीय संवेदना एवं व्यापक मानव-हितों की चेतना का प्रसार करते हैं। वर्तमान भारतीय चरित्र की विसंगतियों के मूल में नरेन्द्र कोहली राजनीति को मानते हैं। राजनीति प्रेरित विद्रूपताओं ने ईमानदारी, सेवा, त्याग जैसी वृत्तियों को बेईमानी, स्वार्थ एवं टुच्चेपन में बदला है। ऐसे विगलित वर्तमान की अभिव्यक्ति के लिए एकमात्र व्यंग्यात्मक तेवर ही कोहली को उपयुक्त लगता है, अपितु ईमानदार अभिव्यक्ति का सहज रूप लगता है। वह स्पष्ट कहते हैं कि यह परिस्थितियों की ही विसंगति है कि उनकी सपाटबयानी भी व्यंग्य कहलाती है। कोहली का व्यंग्य सामाजिक सच का व्यंग्य है, जन-जन की व्यथा-वेदना का व्यंग्य है। अपने चारों ओर के यथार्थ को कोहली सहज एवं सरल लोक-शैली में व्यक्त करते हुए जनभाषा की संभावनाओं को कुशल अभिव्यक्ति देते हैं। राजनीति-संचालित व्यवस्था की पोल खोलते हुए अवाम के संत्रास को वाणी प्रदान करते हैं। धर्म, संस्कृति तथा सनातन भारतीय दर्शन को आजादी के तथाकथित ठेकेदारों ने किस सीमा तक विकृत किया है, इसका सही रूप कोहली के व्यंग्य-निबंधों में देखा जा सकता है।अन्य व्यंग्यकारों के लिए व्यंग्य जहां माध्यम, शैली अथवा रस है, कोहली के लिए वह विधा है। इसी अर्थ में कोहली का व्यंग्यकार अन्य व्यंग्यकारों से विशिष्ट है।

www. RadioSabrang.com

वैश्विक समुदाय की प्रस्तुति
अनेकता में एकता का प्रतीक
रेडियो सबरंग (डेनमार्क)
साहित्य का वैश्विक स्तरीय मंच
उच्च कोटि के साहित्यकारों को
उनकी आवाज़ व प्रसिद्ध गायकों ,
गायिकाओं की आवाज़ में सुनें .....

सुनिए एक दूजे के संग
फिर महकेंगे सारे रंग

संवाद

आकाशवाणी हेतु डॉ.नरेन्द्र कोहली का यह साक्षात्कार डॉ. अवनीजेश अवस्थी ने लिया, जिसमें दिल्ली के कई लेखक एवं साहित्यकार श्रोता-सहभागी के रूप में सम्मिलित हुए। उन्होंने भी डॉ. कोहली से प्रश्न किए।
प्रस्तुति : डॉ. कविता सुरभि

डॉ. अवनीजेश अवस्थी : कोहली जी, हम सब आपकी रचनात्मकता से परिचित हैं। मेरा पहला प्रश्न यह है कि आपने लेखनकर्म का संकल्प कब किया ? कब तय किया कि आपको अपने जीवन में लेखक ही बनना है।

डॉ. नरेन्द्र कोहली : अवनीजेश ! मैं भी आज तक सोचता ही रहा हूँ कि मैंने यह कब तय किया। जहाँ तक मेरी स्मृति जाती है, मुझे लगता है कि मैंने आरंभ से ही लिखना चाहा है। कोई ऐसा अवसर नहीं आया जब मुझे यह संकल्प करना पड़ा हो कि अब मुझे लेखक बनना है। अपने स्कूल की छठी कक्षा की हस्तलिखित पत्रिका में, या हाईस्कूल की मुद्रित पत्रिका में छपी, जो रचनाएँ मेरे पास अब भी सुरक्षित हैं, वे मेरी इस धारणा को प्रमाणित करती हैं। वस्तुत: लेखक पैदा होता है; वह अपने जीवन के किसी मोड़ पर आकर यह संकल्प नहीं करता कि आज से मैं लेखक बनूंगा।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: कई बार जीवन की परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं कि बिना लिखे रहा नहीं जाता है। वे व्यक्ति को बाध्य करती हैं; और परिस्थितियों का मारा वह व्यक्ति लेखक बन जाता है।

डॉ. नरेन्द्र कोहली : मैं प्रतिवाद नहीं करूंगा। मेरे लिए वह घातक होगा। किंतु जहाँ तक मेरी बात है, मुझे बाहर की परिस्थितियों ने लेखक नहीं बनाया; मैं भीतर से लेखक था। मैं अब भी इसी मान्यता पर टिका रहना चाहता हूँ कि लेखक या कलाकार जन्म-जात होता है। प्रकृति उसको वही बनाकर संसार में भेजती है। किसी गायक से पूछा जाए कि आपने कब तय किया कि आप गाएँगे ? तो वह बेचारा क्या बताएगा। यदि भगवान् ने उसे संगीत की प्रतिभा नहीं दी तो वह गा नहीं सकता। गाता है, क्योंकि भगवान् ने प्रतिभा दी है; और प्रतिभा अपना काम करती ही है।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी : कोहली जी, जितनी मुझे जानकारी है, आपने कथा-लेखन से अपने लेखकीय जीवन की शुरुआत की। सामान्यत: ऐसा देखा जाता है कि व्यक्ति कविताओं से आरंभ करता है। आपने शुरुआत कथा-लेखन से ही की या आप भी शुरू में कवि थे ?

डॉ. नरेन्द्र कोहली : घटनाओं के प्रति अपने आकर्षण के कारण कथाकार तो मैं आरंभ से ही था। मेरे स्कूल की सारी शिक्षा का माध्यम उर्दू भाषा थी; मैं उर्दू में पढ़ता रहा। यह एक विचित्र बात है कि स्कूल के दिनों में कभी मैंने कविता लिखने की बात नहीं सोची। मैंने हिंदी पढ़नी शुरु की और कुछ कविताएँ लिखीं। इसमें कुछ प्रकृति के संबंध में, कुछ प्रेम कविताएँ और कुछ व्यंग्य कविताएँ थीं। किंतु लगता है कि वह मौसमी बुखार ही था।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी : अर्थात् जिस समय कविताएँ लिखनी चाहिए थीं, उस समय आपने कविताएँ लिखीं।

डॉ. नरेन्द्र कोहली : हाँ लिखीं; किंतु जिनके लिए लिखीं, उनको सुनाई नहीं।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी : यह दुखद है। ... तो आज सुनाएँगे।

डॉ. नरेन्द्र कोहली : अब तो मैं स्वयं उन्हें भूल चुका हूँ।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: उस समय किसी विशिष्ट कवि से आप प्रभावित भी हुए होंगे।

डॉ. नरेन्द्र कोहली : जब हम पढ़ रहे थे। मैं अपने विषय में ही नहीं कहता, प्राय: विद्यार्थियों को मैंने देखा है कि पाठ्यक्रम में जिसको पढ़ते हैं, उनसे इतना प्रभावित होते हैं कि ... छायावाद पढ़ा तो जो कुछ लिखा, वह लगा कि सुमित्रानंदन पंत को ही लिख रहा हूँ। किशोरावस्था की बात मैं नहीं कर रहा, बाद में भी यह प्रभाव लेखक के लिए एक संकट होता है। जिन लोगों को आप पढ़ते हैं, उनका प्रभाव आप पर होता है। उस प्रभाव से मुक्त होने से ही मौलिकता प्रकट होती है। उस समय तो बहुत सारे कवियों से प्रभावित थे ही। स्कूल, कॉलेज की पत्रिकाओं में लिखी गई पैरोडियाँ इसी प्रक्रिया का अंग होती है। मैं अपने लिए भी मानता हूँ और अपने छात्रों को भी यह बताता रहा हूँ कि जब तक तुम इन प्रभावों से मुक्त नहीं होगे, तुम्हारी अपनी मौलिकता विकसित नहीं होगी।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: जिस समय आप कविता लिख रहे होंगे, वह समय नई कविता का रहा होगा ... कविता अपने छंदों के बंधन से मुक्त हो चुकी होगी। लेकिन आपके जीवन में जो समय था, उस समय सामान्यत: व्यक्ति छंदोबद्ध कविता लिखता है। तो आप ...

डॉ. नरेन्द्र कोहली : जो पढ़ी थीं, वे तो छंदोबद्ध ही थीं। जैसा मैंने कहा, छायावाद का प्रभाव मुझ पर सबसे अधिक रहा; क्योंकि उससे पहले की कविता प्राय: ब्रज और अवधी में थी। और उनसे मेरा वैसा परिचय नहीं था। घर में हम पंजाबी बोलते थे, पढ़ाई का माध्यम उर्दू और बाद में अंग्रेजी हुआ। उस दृष्टि से उन बोलियों से मेरा उतना परिचय नहीं था। खड़ी बोली में छायावादी कविता ही थी, जो ज्यादा प्रभावित कर रही थी। हमारे कॉलेज में दिनकर, नार्गाजुन और उपेन्द्रनाथ अश्क आए। अश्क जी की कविता सुनकर लगा कि मुक्त छंद में कविता करनी है। उन दिनों दिनकर

बहुत महत्वपूर्ण थे। मैं चूंकि बिहार में था ... बिहार में दिनकर और भी अधिक महत्वपूर्ण थे। उन्होंने मेरी हस्ताक्षर-पुस्तिका पर लिखा ... जो शायद आज भी मेरे पास सुरक्षित होगा ... "मुक्त छंद में कविता करना ऐसा ही बेतुका काम है, जैसे कोई बिना जाल के टेनिस खेले।" मुक्त छंद में लिखी अपनी कविता को मैं कविता मानता ही नहीं। सही बात तो यह है कि मेरी कविताएँ, केवल उन्हीं पत्रिकाओं में छपीं जिनका संपादक मैं स्वयं था। किसी दूसरे संपादक ने तो छापी ही नहीं।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: मंत्र दे गए दिनकर जी आपको।

डॉ. नरेन्द्र कोहली : हां।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: कोहली जी, कहानियाँ तो आपने खूब लिखीं, उपन्यासों की श्रृखलाएँ लिखीं, एक विधा और भी है जिसमें आपने खूब लिखा। वह है, व्यंग्य। व्यंग्य लिखना आपने शुरु किया और लगातार लिख रहे हैं। बाकी विधाओं में आपका कहीं कुछ समय के लिए विराम भी दिखाई देता है। किंतु व्यंग्य ऐसी विधा है जिसमें आप कभी भी विश्राम लेते हुए दिखाई नहीं देते। आपके भीतर की यह कोई विशिष्ट बेचैनी है जिसकी वजह से आपने व्यंग्य की विधा को पकड़ा है।

डॉ. नरेन्द्र कोहली : भीतर की बेचैनी ! यह तो बहुत ही शिष्ट भाषा है। वैसे तो खीज है यह। मेरे भीतर एक प्रकार की वक्रता है और मेरे आस-पास के कुछ लोग उससे पीड़ित भी होते हैं। कई बार मुझे कहा गया कि तुम क्या कभी सीधी बात नहीं कर सकते। जैसे कोई कार्टूनिस्ट किसी को देखता है, तो अच्छे-खासे चित्र को भी वह कार्टून के रूप में देखता है। उसकी दृष्टि वैसी होती है, जो उन कोणों से देख सकता है। व्यंग्यकार का दृष्टिकोण भी वक्र होता है। हमारे आस-पास इतना कुछ घटित होता रहता है, जिसे देखकर वक्रता अपना फन काढ़ लेती है। भारत में सामग्री की कमी नहीं है। कई बार तो लगता है कि घटना को अविधा में लिख दीजिए तो भी व्यंग्य बन जाता है। जब सुबह से शाम तक किसी न किसी बात पर आप खीजेंगे, तो व्यंग्य कैसे नहीं लिखेंगे ? जो तुमने संकेत किया कि कुछ विधाओं में विराम या अल्पविराम आता है, शायद यह संकेत कहानियों की ओर है।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: जी कहानी, नाटक ...

डॉ. नरेन्द्र कोहली : मैं नहीं मानता कि मैंने कहानियाँ लिखनी बंद कर दी हैं। या उसमें कोई विराम आया है। घटना, चरित्र या भाव जो मेरे मन में पनपा, वह मेरी उपन्यास-श्रृंखला या उपन्यास का अंग बनकर उसी में समा जाता है। यह रचना प्रक्रिया का ही एक अंग है। इसलिए मैंने लिखना बंद नहीं किया। जो कुछ आया, वह कहानी के रूप में भी आया, तो वह एक बड़ी रचना का अंग बन गया। अत: स्वतंत्र रूप से उसको लिखने की आवश्यकता नहीं रह गई। व्यंग्य में भी कभी-कभी ऐसा होता है; लेकिन चूंकि व्यंग्य इतना छोटा होता है और तत्काल लिखा जाता है इसलिए व्यंग्य आज तक चल रहा है।

नाटक की जहाँ तक बात है, मैं अपने-आपको मुख्यत: नाटककार मानता ही नहीं। सृजन के विषय में मेरी अपनी मान्यता है कि या तो रचना की सामग्री अपनी विधा का निर्धारण करती है या लेखक का व्यक्तित्व। मेरे अपने व्यक्तित्व में पता नहीं कितनी नाटकीयता है। किंतु हुआ यह कि 'शंबूक की हत्या' नाम से एक छोटा उपन्यास मैंने लिखा। वह प्रकाशक के पास गया। प्रकाशक का संपादक उसको रखकर बैठा रहा। उसने मुझसे कहा, 'यह रचना' मैं वापस नहीं करना चाहता, छापना चाहता हूँ; पर तबसे सोच रहा हूँ इसमें क्या कमी है। मेरी समझ में नहीं आ रहा। तब मेरे मन में आया और मैंने कहा, आपको नहीं लगता कि इसमें संवाद बहुत ज्यादा हैं, प्रत्यक्ष हैं; तो नाटकीयता के कारण आपको ऐसा लगा रहा है। वे बोले, हां, यही बात मेरी समझ में नहीं आ रही थी। तब मैंने उसको नाटक के रूप में लिखा। मैं यह मानता हूँ कि अपनी मेरी मुख्यधारा में नाटक नहीं है। यद्यपि नाटक मैंने लिखे। जब कभी सामग्री ऐसी आ गई जो केवल नाटक के रूप में प्रस्तुत की जा सकती थी तब नाटक लिखे गए।

कहानी या उपन्यास ... उसको मैं कथा कहता हूँ। जो कुछ मेरे भीतर उभरता है, घटना या चरित्र के प्रति जो मेरा लगाव है, उसके कारण मैं कभी यह नहीं कहूँगा कि मैं कहानीकार नहीं हूँ। पर नाटक के बारे में कई बार यह कहना पड़ता है कि भई, मैं नाटककार हूँ नहीं। पर नाटक लिखे गए, यह अलग बात है।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: लेकिन इधर आप पटकथा लिख रहे हैं।

डॉ. नरेन्द्र कोहली : हां, यह कुछ ऐसा ही है जैसे एक बच्चा आपको सौंप दिया जाए कि भई इसके कपड़े बदल दीजिए। इसने निक्कर पहनी थी, अब आप इसको पाजामा पहना दीजिए। सामग्री तो यही है पर इसको इस विशिष्ट शिल्प में जाना है। 'गीता रहस्य' लिखी उसी सामग्री पर मैं 'महासमर' उपन्यास लिख चुका हूँ। अब उसी में से कुछ चीजें या उससे मिलती-जुलती चीजें या उसी क्षेत्र की चीजें मुझे पटकथा के रूप में लिखनी हैं। मैं मानता हूँ कि यह केवल उसका शिल्प बदलने की बात है। मूलत: पट-कथा लेखक जैसा कोई कलाकार होता होगा, ऐसा शायद नहीं है।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: अच्छा कोहली जी ! आपने नाटक लिखे, पटकथा लिखी और लिख रहे हैं; और उपन्यास और कहानियाँ भी लिखीं। नाटक और संचार माध्यमों के क्षेत्र में आप दर्शकों से सीधा संबंध स्थापित कर पाते हैं। उसमें आपको ज्यादा सुविधा होती है या उपन्यास और कहानी के माध्यम से ?

डॉ. नरेन्द्र कोहली : यदि आप उपन्यास लिख रहे हैं तो जो पात्र आपके सामने हैं ... उनका मन आप बनाएँगे, परिस्थितियाँ आप बनाएँगे, संसार आप चित्रित करेंगे। पटकथा में निर्देशक आपको पहले से बहुत कुछ बता देता है कि ऐसा ही होना है। 'गीता रहस्य' में नितीश भारद्वाज ने मुझसे कहा कि कृष्ण इसमें नारायण के रूप में चित्रित होंगे; तो मुझे उसी रूप में उनको लिखना होगा। वह मेरी मौलिक रचना नहीं है; जबकि उपन्यास मेरी बिल्कुल मौलिक रचना है। उपन्यास लेखन में कोई सीमा नहीं है, कोई शर्तें नहीं हैं। पटकथा में सब कुछ बना हुआ है। एक कवि है जो अपना स्वतंत्र महाकाव्य लिख रहा है। उसको कहा जाए कि इस फिल्म के लिए, इस परिस्थिति के लिए, इन पात्रों के लिए इस भाव का गीत लिखें आप। यह अंतर वैसा ही अंतर है।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: कोहली जी ! आप व्यंग्य भी लिखते रहे, कहानी भी। आप अकस्मात् ही रामकथा की ओर कैसे मुड़ गए ?

डॉ. नरेन्द्र कोहली : बहुत लोगों को ऐसा लगता है कि मैं जैसी कहानियाँ लिख रहा था, जिस प्रकार के व्यंग्य लिख रहा था, उनके मध्य अचानक रामकथा जैसी सात्विक चीज कैसे आ गई ? लोग कहते नहीं; किंतु भाव कुछ ऐसा ही होता है कि एक पापी मन में एक ऐसी सात्विक बात कैसे आई कि रामकथा लिखी जाए।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: व्यंग्यकारों को आप पापी कह रहे हैं।

डॉ. नरेन्द्र कोहली : मनुष्य को स्वयं मालूम नहीं होता कि उसका मन क्या है। मुझे स्वयं नहीं मालूम था कि मेरे भीतर क्या है। मुझे लगता है कि लेखक को इस अनुसंधान में भी समय लगता है कि उसका मन क्या है, उसका भीतरी संसार क्या है। आज मैं इस बात को समझता हूँ और यह कहता हूँ कि यदि राम के विरुद्ध, या राम पर, किसी प्रकार के आक्षेप लगाए जाएँ, या उनको लांछित किया जाए, या उनके विरुद्ध कुछ कहा जाए, तो मुझको जो पीड़ा होती है, वह मुझे बताती है कि मुझे उस चरित्र से, उन मूल्यों से, उन आदर्शों से प्यार था। उसको मैंने अर्जित नहीं किया है, वह मेरे भीतर था। जैसे मैं कुछ दूसरे पात्रों को ... राम को तो आप कहेंगे कि वे ईश्वर हैं, अत: यह आस्था और श्रद्धा की बात है; किंतु सुभाष चंद्र बोस ... मैं जब जमशेदपुर में अभी स्कूल में पढ़ता था, हमारे साथ बहुत बड़ी संख्या में बंगाली लड़के थे। कोई बंगाली कहे कि सुभाषचंद्र बोस बंगाली थे, तो इसमें किसी को कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए। नेता जी बंगाली तो थे ही; किन्तु उनको बंगाली कहा जाना मुझको बुरा लगता था। हम कहते थे, नेता जी भारतीय थे। सुभाष ने कहा कि 'चलो दिल्ली चलो'। उन्होंने नहीं कहा कि 'चलो कलकत्ता चलो'। इसलिए उन्हें केवल बंगाल तक सीमित करना मुझे बुरा लगता था। आज भी लगता है, तब भी लगता था, किंतु तब मुझे कारण मालूम नहीं था, आज मुझे कारण मालूम है। रामकथा के प्रति मेरा लगाव पहले से रहा होगा, यह आज मैं जानता हूँ। तब प्रकट नहीं था। मैंने पाया है कि जब आप साहित्यिक क्षेत्र में आते हैं (बाकी क्षेत्रों का मुझे ज्ञान नहीं है) तो आप यश की कामना लेकर आते हैं। आप चाहते हैं कि आपको सब लोग पहचानें, प्रतिष्ठा दें, मान्यता दें। इसके लिए बाहरी परिवेश आपको दबाव में रखता है कि आजकल किसको साहित्य कहा जा रहा है, किसे अच्छा माना जा रहा है, किस आलोचक से आपको मान्यता चाहिए ... एक तरह का अचेतन दबाव होता है। मुझ पर भी रहा होगा। हो सकता है, उस दबाव में कुछ समय तक अपने मन में संचित इस आकर्षण को मैंने टाला हो। यह बात मैं इसलिए कहता हूँ कि बहुत पहले, सन् 1965 या 66 ई. में मैंने एक कहानी 'दूसरे कगार का निषेध' लिखी थी, जिसमें पत्नी अपने पति की इच्छा के विरुद्ध मायके जाने की बात कहती है; और पति कहता है कि यह उचित नहीं है। उस समय तत्काल मेरे मन में शिव-पार्वती का ध्यान आया। पार्वती दक्ष के यज्ञ में जाने के लिए कह रही थीं ... महादेव शिव ने कहा, यह उचित नहीं है, पर मैं तुमको रोक नहीं सकता। मुझे लगा कि दोनों बिल्कुल समानांतर हैं, बिम्ब-प्रतिबिम्ब हैं। मैंने वह तब भी लिखा था। मनहर चौहान, उस समय मेरे बहुत निकट थे, साहित्य जगत में मुझसे ज्यादा प्रतिष्ठित थे ... उन्होंने कहा, अरे यार यह पौराणिकता कहाँ बीच में आ गई, काटो इसे। उन्होंने उसे काट दिया। मैंने इसकी अनुमति उनको दे दी। किंतु मेरा अपना मन तो वही था।

1971 ई. में बंगलादेश का युद्ध हुआ। उसमें बंगलादेश के बुद्धिजीवियों को सामूहिक रूप से मारा जा रहा था। सूचियाँ बनाकर उनकी हत्याएँ की जा रही थीं। उसने मेरे सामने यह चित्र स्पष्ट किया कि राक्षस बुद्धिजीवियों को या ऋषियों को क्यों खाते थे। यानि किसी भी देश के, किसी भी पिछड़ी हुई जाति के बुद्धिजीवियों को समाप्त करने का अर्थ यह है कि आप नहीं चाहते कि उनको बौद्धिक नेतृत्व मिले; इसलिए यदि उस युग में राक्षस, ऋषियों को खा रहे थे और आज बंगलादेश में अमरीका, पाकिस्तान या किसी भी देश की ओर से एक सूची जारी की जाती है कि इन लोगों को मार दिया जाए ... तो मुझे नहीं लगता कि समय बदल गया है या मनुष्य बदल गया है। ... तत्काल मेरा मन रामकथा की ओर जाता है।

मैंने एक उपन्यास लिखा था - 'आतंक'। लोगों ने कहा कि उसमें आशा की कोई किरण नहीं है, अंधकार से लड़ने वाला कोई नायक नहीं है। मुझे लगा कि आज के युग में, जब कोई वैसा नायक आस-पास है ही नहीं, तो नायक हम कहाँ से लाएँ ? तब मेरा ध्यान विश्वामित्र की ओर गया था। विश्वामित्र को जब आवश्यकता पड़ी, वे राम को लाए। और ऐसी ही छोटी-छोटी कई बातें हुईं, जिनसे मुझे लगा कि रामकथा किसी और देश या किसी और काल की कथा न होकर, हमारी समकालीन कथा है - जहाँ सोने की लंका है, जहाँ शक्तिशाली विकसित और समृद्ध जातियाँ हैं, पिछड़ी हुई जातियाँ हैं, जहाँ चारों ओर राक्षसी आतंक है। देवता भी डरते हैं। ऐसे में एक राम ही हैं, जिनका मन न किसी से डरता है, न घबराता है। एक ऐसे राम, जो कहते हैं : 'रामोस्मि सर्वम् सह्य' । एक राम, जो यह कहते हैं, 'निशिचर हीन करौं मही, भुज उठाइ प्रण कीन।' वह एक पात्र है जो देवताओं और दानवों दोनों, इंद्र और रावण, की सम्मिलित शक्ति के सामने निर्भय होकर खड़ा है। उन्होंने मुझे आकृष्ट किया और मुझे लगा कि आज भी संसार में वही हो रहा है, जो शताब्दियों पूर्व हो रहा था। जब कोई समर्थ जन, कोई महान मानव जन-सामान्य से जुड़ता है, तो अवतार की श्रेणी तक चला जाता है। यह कोई पुरानी बात है, अतीत की बात है, ऐसा मैं नहीं मानता। आज के युग की बात मानता हूँ; इसलिए मैं उस

ओर गया और क्रमशः मैंने वह उपन्यास लिखा।

कविता सुरभि : जब हम आपके व्यक्तित्व और लेखन के निकट आते हैं, तो दोनों ही के माध्यम से यह बात बहुत स्पष्ट रूप से उभरकर आती है कि सत्य और सात्विकता से बड़ा सुख और आत्मसंतुष्टि कहीं नहीं है; जबकि देखने में आता है कि संसार में सत्य के लिए जीने वाला व्यक्ति दुःख और कष्टों से घिरा है। फिर आपकी विचारधारा, आपकी अनुभूति के साथ इस प्रत्यक्ष दीखने वाली व्यावहारिकता का समीकरण कैसे बैठाया जाए ?

डॉ. नरेन्द्र कोहली : कविता ! तुम्हारा यह प्रश्न वस्तुतः आज का नहीं, युगों-युगों का प्रश्न है। महाभारत में धर्मराज युधिष्ठिर की अपनी पत्नी द्रौपदी, उनका अपना छोटा भाई भीम, बार-बार उनसे यही प्रश्न करते हैं। उनका विरोध करते हैं कि उनको इस धर्म से क्या मिला ! आप वन-वन, जंगल-जंगल भटक रहे हैं और वह अधर्मी दुर्योधन राजसत्ता का भोग कर रहा है। ऐसे धर्म का क्या लाभ ? आज का प्रश्न भी वही है कि अगर आप सात्विक जीवन जीना चाहते हैं, सच्चा और निर्मल जीवन जीना चाहते हैं तो सांसारिक दृष्टि से आप सफल हो पाएँगे क्या ?... प्रश्न है कि सफलता अथवा उपलब्धि आप मानते किसे हैं ? यदि आप यह मानते हैं कि भौतिक उपलब्धियाँ, जो राक्षसी ढंग से मिलें, अधिक धन मिल जाए, जीवन का अधिक भोग मिल जाए, उनके लिए चाहे दूसरे का धन छीनना पड़े, दूसरे की हत्या करनी पड़े, बेईमानी करनी पड़े तो ठीक है। मिल जाएगा, आपको; यदि आप उसको उपलब्धि मानते हैं। किंतु जो मनुष्य सूक्ष्म दृष्टि से देखता है, स्थूल के पीछे छिपे उस सूक्ष्म को देखता है ... उसकी समझ में आता है कि अध्यात्म में इसको माया कहा गया है। माया भ्रम उत्पन्न करती है। वस्तुतः यह उपलब्धि नहीं है।

वास्तविक उपलब्धि तो वही है, जिससे आप अपनी आत्मा को अधिक से अधिक निर्मल कर सकें। आरंभ में जैसा तुमने कहा कि वास्तविक सुख तो वही है। यह जितना भौतिक सुख है, जिसको हम उपलब्धि कह रहे हैं, वस्तुतः यह अपने-आपको अधिक कलुषित और गलित करने का प्रयत्न है, जिसको हम देख नहीं पाते हैं। जब हम कहते हैं कि वह व्यक्ति व्यावहारिक है, तो हम कहीं साथ में यह भी कहते हैं कि यह व्यक्ति झूठा है, बेईमान है। जब किसी को यह कहा जाता है कि यह बहुत अव्यावहारिक है, आदर्शवादी है, तो हम यह भी कह रहे होते हैं कि यह सच्चा आदमी है, जिसको कोई बेईमानी करने के लिए प्रवृत्त या लुब्ध नहीं कर सकता। इस दृष्टि से आपका जीवन दर्शन क्या है ? हम मानते हैं कि अन्ततः सुख तो वही है, जब आप इन भोगों से, द्वंद्वों से, सांसारिक बंधनों से, उदासीन हो जाएँ, ऊपर उठ जाएँ। मुझे नहीं मालूम कि शब्दों में इसे अनुभव किया जा सकता है या नहीं, कहा जा सकता है या नहीं, क्योंकि मेरी साधना उस तरह की नहीं है। यह अनुभूति का विषय है और जैसे-जैसे व्यक्ति की दृष्टि सूक्ष्म होती है, उसको दिखाई देता है कि यह सारे चमकदार पदार्थ, जिनके प्रति वह लुब्ध था, वस्तुतः इनका कोई महत्व नहीं है। यह एक तरह से मनुष्य को दिग्भ्रमित करती हैं।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: कोहली जी ! आपने स्वयं ही महाभारत का संदर्भ छेड़ दिया है। मैं महाभारत की बात करना ही चाहता था। भारतभूमि पर दो महाकाव्य युग-युगों से प्रचलित हैं : रामायण और महाभारत। आपने पहले रामकथा लिखी, फिर उसके पश्चात् आपने महाभारत ही पुनर्सृजत कर दिया। मेरे दो प्रश्न हैं : एक तो यह है कि यदि महाभारत की कथा जाननी है, तो महाभारत ही क्यों न पढ़ा जाए?नरेन्द्र कोहली का 'महासमर' क्यों पढ़ा जाए? ...और यदि आपका 'महासमर' महाभारत नहीं है तो फिर आपने इसका नाम, इसके पात्र, इसके चरित्र, इसकी घटनाएँ, महाभारत के अनुरूप क्यों और कैसे रखीं ?

डॉ. नरेन्द्र कोहली : मेरा विचार है कि यह प्रश्न केवल नरेन्द्र कोहली से नहीं है। यह प्रश्न उन सारे लेखकों, उन सारे कृतिकारों से है, जिन्होंने प्रख्यात् कथा-लेखन किया है। है ना ?

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: जी।

डॉ. नरेन्द्र कोहली : वह संस्कृत से लेकर सारी भारतीय भाषाओं और विदेशों में भी रहा होगा, ऐसा मुझे लगता है। मुझे मालूम नहीं है।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: मैं आपसे जानना चाहता हूँ, वास्तव में मिथक की जो शक्ति है ... रामकथा पर तो एक बड़ी सुदीर्घ कथा मिलती है और रामकथा में वह निहितार्थ हैं भी, जो अपने-अपने हर समय के सच को अभिव्यक्त करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास, जो सबसे महत्वपूर्ण रचनाकार हैं, रामकथा के; उन्होंने स्वयं एक से अधिक बार रामकथा लिखी। नौ बार। बारह में से नौ कृतियाँ उनकी रामकथा पर हैं। लेकिन उपन्यास के रूप में 'महाभारत' को प्रस्तुत करने के पीछे आपके निश्चित रूप से कुछ अलग अर्थ भी रहे होंगे, हम दरअसल उन अर्थों की तरफ जाना चाहते थे।

डॉ. नरेन्द्र कोहली : मैंने आरंभ में ही कहा कि कोई सोच कर या संकल्प करके लेखक नहीं बनता। मैं यह भी मानता हूँ कि सृजन लेखक के अपने संकल्प से या अपनी इच्छा से नहीं होता। कौन सी चीज आपके भीतर कहाँ अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित होगी ... नहीं मालूम ! जैसे हम कहते हैं कि संतान गर्भ में है तो माँ प्रसव के लिए बाध्य होगी। कलाकार के लिए भी लगभग वही स्थिति है। 'महाभारत' को मैंने साहित्य के रूप में पढ़ना आरंभ किया। इतना बड़ा ग्रंथ जिसको संसार मानता है, और भगवद्गीता जिसका एक अंश है, उसको मैं न पढ़ूं - ऐसा

कैसे हो सकता है।

डॉ.अवनीजेश अवस्थी:महासमर का बीज कहाँ पड़ा?

डॉ. नरेन्द्र कोहली : जब मैं रामकथा पूरी कर चुका, तो एक घटना घटी। मैं थोड़ा सा तुमको चर्चा से अलग ले जा रहा हूँ। मेरे एक परिचित मंत्री बन गए। उससे मेरा कोई महत्व नहीं बढ़ा; किंतु वे मंत्री बन गए तो ...

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: उसमें आपका कोई हाथ भी नहीं था।

डॉ. नरेन्द्र कोहली : नहीं उस में मेरा कोई हाथ था, न उससे मेरा कोई लाभ होने जा रहा था। पर मैंने देखा कि मेरे आस-पास के लोगों में मेरा महत्व बढ़ गया। क्योंकि उन्हें लगा कि यह उस मंत्री को जानता है। जैसा मैंने पहले कहा, सारी पौराणिक कथाएँ मेरे मन में प्रतिबिंब के रूप में जागती हैं। मेरे मन में कृष्ण और सुदामा जागे ... सुदामा तो वही सुदामा था पर जिस दिन कृष्ण ने सार्वजनिक रूप से उनको अपना मित्र स्वीकार करके गले लगा लिया, उस दिन सुदामा का महत्व बढ़ गया; और उसके लिए सोने के महल खड़े हो गए। मेरे सामने यह एक राजनीतिक कथा थी। इस कथा को लिखने के लिए मैं कृष्ण के विषय में पढ़ रहा था। उनके चरित्र ने जिस तरह से मुझे आकृष्ट किया, उससे मैं कर्म-सिद्धांत की ओर आकृष्ट हुआ। मेरे उपन्यास अभिज्ञान की कथा चाहे राजनीतिक है; किंतु उसकी रीढ़ की हड्डी कर्म-सिद्धांत है। कर्म-सिद्धांत ... मुझे लगता है कि यदि हम अध्यात्म छोड़ दें, जन्माँतरवाद छोड़ दें, पुनर्जन्म की बात छोड़ दें, तो भी इस जीवन में बिल्कुल स्थूल रूप से, भौतिक रूप में जो घटनाएँ घटित होती हैं, वे कर्म-सिद्धांत को प्रमाणित करती हैं। जब न्यूटन कहता है कि एवेरी एक्शन हैज इट्स ईक्वेल एँड आपोजिट रिएक्शन तो वह बिल्कुल वही बात कह रहा है। कृष्ण कहते हैं कि प्रत्येक कर्म का फल होता है। कर्म एक्शन है और फल रिएक्शन है। मैं मानता हूँ कि यह बिल्कुल वैज्ञानिक सिद्धांत है। तब तक अध्यात्म मेरे मन में नहीं आया था; किंतु जिस प्रकार कृष्ण ने मुझे मुग्ध किया ...! तो मैं राम के पास भी; किंतु राम से एक दूरी, सम्मान और भक्ति का भाव था। या कहिए कि समान रूप से, समकक्ष होकर, वे मुझे नहीं मिले।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: कृष्ण सखा हो गए ?

डॉ. नरेन्द्र कोहली : कृष्ण मिले। उस दृष्टि से मैं और भी लुब्ध होता गया। भागवत और महाभारत पढ़ने के बाद मुझे लगा कि अगर जीवन को समझना है तो ...! वस्तुत: महाभारत को पढ़ना मेरे लिए जीवन को समझने का पर्याय था। जब महाभारत मेरे भीतर उतरता चला गया, तो उसको लिखना मेरे लिए अनिवार्य हो गया। जैसे ... एक फल है उसका बीज है। आप उस बीज को बोते हैं। उससे दूसरा फल होता है। आता तो उसी परंपरा से है किंतु वह वृक्ष नया है। उसमें जो फल लगेगा, उसका अपना अस्तित्व है। महाभारत या रामायण की जो परंपरा है, उस परंपरा से आया हुआ वह बीज है; किंतु उस बीज से जो कुछ फलित हुआ, वह पुनर्सृजन या सृजन ... आप जो भी कहना चाहें; क्योंकि मैं यह नहीं मानता कि मैंने महाभारत को लिखा। मैं यह मानता हूँ कि मैंने एक उपन्यास लिखा, समकालीन उपन्यास जिसकी वेव-लेंग्थ आज के पाठक से मिलती है, इसलिए मुझको उसके लिए पाठक मिले। मैं यह नहीं मानता कि मैं व्यास से आगे कुछ कह रहा हूँ, पर व्यास की बात जो मेरी समझ में आयी, धर्मराज युधिष्ठिर की बात जो मेरी समझ में आयी, उसको मैंने पचा कर अपनी ओर से कहा। वस्तुत: जो ज्ञान हम पाते हैं, वह परंपरा से ही तो पाते हैं। जो विज्ञान आप पाते हैं, वह भी परंपरा से ही पाते हैं; किंतु उसको पचा कर, उससे एक कदम आगे निकल जाते हैं। कुछ इसी तरह का मामला सृजन में भी है। ...लेकिन हुआ यह है कि मेरी उस रामकथा में कहीं भक्ति या अध्यात्म नहीं है और महासमर के भी आरंभिक दो खंडों में न भक्ति है, न अध्यात्म; किंतु इस बीच में संयोग कुछ ऐसा हुआ...। मैं मानता हूँ कि यह प्रकृति की अपनी योजना होती है। भगवान की अपनी लीला होती है...हुआ यह कि मुझे स्वामी विवेकानंद पर लिखना पड़ा और ...

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: लिखना पड़ा ?

डॉ. नरेन्द्र कोहली : लिखना पड़ा ! मुझे बाध्य किया गया उसके लिए। दूसरे की इच्छा से कुछ काम करने के लिए मैं उस ओर बढ़ा था; किंतु जब मैं थोड़ा बहुत यह समझ पाया कि अध्यात्म क्या है, तो उससे युधिष्ठिर और स्वामी विवेकानंद दोनों को समझने में मुझे सुविधा हुई। मुझे लगा कि वह मुझे अज्ञात प्रेरणा से सिर्फ इसलिए पढ़ाया गया ताकि मैं युधिष्ठिर के चरित्र को समझ सकूं। वह व्यक्ति जो बाहर से संघर्ष करता हुआ नहीं लगता, वह अपने भीतर भयंकर रूप से संघर्षशील है ! उसके लिए राज्य महत्वपूर्ण नहीं था, धर्म महत्वपूर्ण था। वह दुर्योधन से नहीं लड़ता, अपने मन के लोभ से लड़ता है। यह बात अध्यात्म को समझे बिना, समझ में नहीं आ सकती। उस अज्ञात प्रेरणा से मैंने यह पाया और तभी यह भी समझा कि लेखक का यह अहंकार कोई अर्थ नहीं रखता कि वह लिख रहा है या वह रच रहा है। वह सारा कुछ स्वत: होता है, जैसे मधुमक्खी के भीतर वह यंत्र प्रकृति ने कहीं लगा दिया है जिससे वह रस लेती है और मधु बनाती है। उसमें मधुमक्खी कुछ नहीं कर रही। वैसे ही मेरे भीतर यदि एक लेखक का यंत्र बना तो वह प्रकृति ने लगाया, उसने बनाया, ईश्वरीय इच्छा से हुआ, उसमें मेरा अपना कुछ नहीं है। जो कुछ कर्म हो रहा है, वह उस यंत्र के माध्यम से है, उसकी इच्छा से है। इसलिए यह भी समझ में आ गया कि इस तरह के अहंकार का कोई अर्थ नहीं होता।

डॉ.अवनीजेश अवस्थी: लेकिन कोहली जी, आपके बारे में एक धारणा यह है कि आप गुस्सा जल्दी हो जाते हैं!

डॉ. नरेन्द्र कोहली : अगर मैं क्रोध करता हूँ, तो हो सकता है वह सात्विक क्रोध हो।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: अहंकार तो नहीं है न !

डॉ. नरेन्द्र कोहली : यदि अहंकार है तो बुरा है। मैं उसका समर्थन नहीं करूंगा। हमारा सारा संघर्ष यही है कि हम अपने अहंकार से लड़ सकें। वैसे डॉ. अवनीजेश अवस्थी! मैंने तुमको कभी नहीं डांटा।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: इसीलिए तो यह प्रश्न पूछने का साहस कर सका मैं। ... कोहली जी, आपने अच्छा किया, स्वामी विवेकानंद की बात कर दी और संभवत: इसलिए महाभारत के बीच में आपने 'तोड़ो, कारा तोड़ो' लिखा। आपने इस ओर संकेत किया कि किसी अज्ञात प्रेरणा से वह उपन्यास लिखा गया। मैंने आपके साहित्य को जितना पढ़ा है, उसमें मुझे लगता है कि बाकी उपन्यासों में तो आपकी रचना प्रकृति कुछ समझ में आती है, जिसमें आपका कुछ आभास रहा होगा; लेकिन 'तोड़ो कारा तोड़ो' के जितने खंड निकले हैं, मैंने भी पढ़े हैं; जो भी इस उपन्यास के खंडों को पढ़ता है, (यद्यपि उपन्यास अभी अपूर्ण है, वह कार्य अभी आपको पूरा करना है) वह मुग्ध और चमत्कृत हो जाता है। आपने एक बार कहीं मधुमती भूमिका की बात की थी; मुझे लगता है कि शायद 'तोड़ो, कारा तोड़ो' वास्तव में आपके उस लेखकीय व्यक्तित्व का सही मायने में प्रतिबिंब है या 'तोड़ो, कारा तोड़ो' की उस रूप में अभिव्यक्ति हो पाई है। आपने महासमर की लंबी श्रृंखला लिखी लेकिन आपको ज्यादा संतुष्टि 'तोड़ो, कारा तोड़ो' से मिलती है या 'महासमर' जैसी लंबी उपन्यास श्रृंखला लिखने से ?

डॉ. नरेन्द्र कोहली : संतुष्टि तो लेखन से मिलती है। जब तक कलम चलती है, तब तक मन शांत रहता है। जब नहीं लिखा जाता, अकुलाहट तभी होती है। जो तुम कह रहे हो कि 'तोड़ो, कारा तोड़ो' में कुछ इस तरह की विशिष्टता है। मुझे नहीं मालूम; क्योंकि मैंने कहा, वह तो मैंने स्वामी जी पर मुग्ध होकर लिखा है। बाकी ऐतिहासिक और पौराणिक पुरुष हैं; किन्तु विवेकानंद बिल्कुल हमारे अपने काल के हैं। सौ-सवा सौ वर्ष भी नहीं हुए; और उस व्यक्ति में इतने गुण हैं, इतने गुण कि हम दस-बीस लोगों को मिलाकर बहुत यत्न करके भी, उतने गुणी नहीं हो सकते। ऐसे में सिवाय मुग्ध होने के और कुछ नहीं किया जा सकता था। अब अगर उस मुग्धावस्था में उनके साथ कुछ तादात्म्य ...

डॉ. सीतेश आलोक : कोहली जी, महाभारत और रामायण की कथा लिखने से पहले आपने इन पुराकथाओं का पूरा-पूरा अध्ययन किया होगा। आप उनको मिथक मानते हैं; या आप उनको इतिहास मानते हैं, यह बहुत ही चर्चा का विषय है। आपकी इसमें दृष्टि क्या है, सोच क्या है ? मैं एक व्यक्तिगत प्रश्न और पूछना चाहूँगा। हालांकि यह नितांत व्यक्तिगत प्रश्न है लेकिन संभवत: लेखक का व्यक्तित्व भी उसकी रचना को प्रभावित करता है। उसको एक मार्ग, एक दिशा देता है। सुना गया है कि आप पूजा में कुछ समय लगाते हैं। तो आप किसकी पूजा करते हैं और उस पूजा का उद्देश्य क्या है ?

डॉ. नरेन्द्र कोहली : जिसे आपने व्यक्तिगत प्रश्न कहा, उसका उत्तर पहले दूं। पूजा मैं करता हूँ और मुझे यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है कि जब तक अपने भीतर अहंकार प्रबल था, तब तक सिर नहीं झुकता था। मुझे रजनीश की पंक्तियाँ याद आती हैं कि इसका कोई महत्व नहीं है कि आप किसकी पूजा करते हैं, मूर्ति यदि है तो वह पत्थर की है या लकड़ी की है या चित्र है। महत्व इस बात का है कि आपका सिर झुकता है। आपका अहंकार विगलित हुआ है, इसलिए सिर झुका है। मैंने एक बहुत लंबा निबंध आत्मरचना के रूप में लिखा है, जिसमें मैंने यह बताया कि मैं हताशा और अवसाद का रोगी रहा हूँ। अभी भी मुझे वह कष्ट है और मैं मानता हूँ पीट-पीटकर सही मार्ग पर लाने का यह प्रकृति की ओर से प्रयत्न था। जब तक अहंकार रहता है, तब तक हताशा, निराशा भी रहती है; किंतु जब आप यह समझ जाते हैं कि इस अहंकार का कोई अर्थ नहीं है; कोई और है जो कर रहा है और आपको केवल उसे स्वीकार भर करना है, तो आपका सिर झुकने की स्थिति में आता है। डॉक्टरों ने मुझे मैडिटेशन के लिए कहा, वैसे उसको जरा सैक्यूलर चीज मानते हैं। पर एक वैद्य जी ने हनुमान की साधना करने के लिए कहा। साधना, सिर झुकाना, हाथ जोड़ना, कुछ करना ... आरंभ तो मैंने वहीं से किया। बहुदेववाद भी हमारे यहाँ है, अब मैं क्या कहूँ। इष्ट-देव वाली बात वैसी नहीं। जब वेदांत में यह मान लिया कि तत्वत: सब एक ही हैं ... राम को माथा झुकाओ या शिव को या कृष्ण को ... सब एक ही हैं तो कोई भी प्रतिमा हो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। प्रयत्न यह करता हूँ कि मेरा मन उनको विभाजित न करे। उनको समान भाव से एक ही सत्ता मान करके उनके सामने सिर झुकाता हूँ।

आपने जो पूछा कि उसका लक्ष्य क्या है तो मेरा विचार है, लक्ष्य ... अंतिम उद्देश्य या प्राप्ति तो यही है कि माया हटे, रूपाकार समाप्त हो और स्वरूप को हम जानें। उस स्वरूप को जानने के लिए वह प्रेरित करे, सुविधा दे और अपनी कृपा बरसाए। भक्ति तो यही है। भगवान से कुछ और माँगना, संसार माँगना मुझे गलत लगता है।

आपका पहला प्रश्न, रामायण-महाभारत के विषय में मिथ को लेकर था। मैं यह मानता हूँ कि हमारे ग्रंथ हमारा इतिहास भी हैं, काव्य भी और हमारा अध्यात्म भी। इसलिए कुछ भ्रांतियाँ हो सकती हैं; किंतु मैं यह मानने को बिलकुल तैयार नहीं हूँ कि मिथ, जिसका अर्थ होता है काल्पनिक या झूठ; उस अर्थ में मैं इन्हें माइथॉलोजी बिल्कुल नहीं मानता। मैं इन्हें पुराकथाएँ कहता हूँ।

मलिक राजकुमार : आपने लिखा 'तोड़ो कारा तोड़ो' यानि मुक्ति की बात ! और एक महासमर यानि युद्ध की बात।

इसके साथ ही आपका एक उपन्यास 'प्रीतिकथा' भी काफी चर्चित रहा। उसमें आपने प्रीति या प्रेम को पारंपरिक ढंग से लिया। आज हम देख रहे हैं कि हमारे यहाँ इतना बाजारवाद फैला हुआ है। तो क्या वह संदर्भ बदला नहीं है। उन तथ्यों में परिवर्तन नहीं आया ? बेशक वरीयताएँ आज भी वही हैं; परंतु मैं समझता हूँ कि तथ्यों में बहुत ज्यादा परिवर्तन आया है तो वह कहीं नजर नहीं आया आपके भीतर !

डॉ. नरेन्द्र कोहली : जो आप कह रहे हैं ... दूसरे रूप में लोगों ने इस प्रकार की शिकायत की कि यह आदमी पुरानी बातों में ही क्यों रमा रहता है। नई बात क्यों नहीं करता। मुझे लगता है कि सत्य तो एक वही होता है, प्रेम तो वही है। चाहे सूफी कवियों ने उसको किसी रूप में लिया हो, या रोमाँस या भोग के रूप में लिया हो ... प्रेम का वास्तविक अर्थ तो वही रहेगा। हम उसके संदर्भ बदलते रहते हैं।

प्रीतिकथा में वस्तुत: मैंने इसी विचार को उठाया है कि प्रेम का वास्तविक रूप है क्या। यह उसी को जानने का प्रयत्न है। इसीलिए उसमें दो-तीन प्रेम-कथाएँ चलती हैं। कुछ लोगों का कहना है कि यह मेरी आत्मकथा है। मैं उससे बिल्कुल इंकार भी नहीं करता; पर अब कोई पूछने लगे कि अच्छा, आप अपनी प्रेमिका का नाम बता दीजिए, तब मुझे कहना पड़ता है कि भई उपन्यासकार हूँ, कहीं-कहीं उसमें कल्पना भी है।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: माना जाता है कि महाभारत ग्रंथ यदि घर में रखें तो परिवार में महाभारत हो जाता है। आपने तो पूरा महासमर ही लिख डाला।

डॉ. नरेन्द्र कोहली : हमारे एक मित्र हैं। उन्होंने 'महासमर' पढ़ा तो कहा कि वे मूल महाभारत पढ़ना चाहते हैं; और मुझसे अनुरोध किया कि मैं मूल महाभारत खरीद कर उनको भिजवा दूं। मैंने गीता प्रेस से पूरा एक सेट उनके लिए मंगवाया। वे बंबई में रहते थे। एक-एक खंड करके जाना था। मैंने एक खंड भेज दिया। महीने भर में एक पत्र के साथ वह खंड लौट आया। पत्र में उन्होंने लिखा था, जब से महाभारत का यह खंड मेरे घर में आया है, तबसे हमारे घर में कलह और रोग इत्यादि घिर आये हैं। कृपया आप इसको वापस ले लीजियेगा। ... मैंने उनको लिखा कि यह तो मैं रख रहा हूं , क्योंकि हमारे मित्र माँगते ही रहते हैं, उन में से किसी को दे दूँगा।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: तो आपने 'महासमर' भेज दिया उनको ?

डॉ. नरेन्द्र कोहली : नहीं, वह खंड रख लिया। उनको लिखा, यदि आप इस बात को स्वीकारेंगे, तो मेरे घर में महाभारत के कुछ नहीं तो पाँच-सात सेट तो पूरे के पूरे हैं। ऐसे में मेरे घर में तो कोई जीवित ही नहीं बचता। यह अंधविश्वास है। जो पति-पत्नी लड़ते हैं, वे अपने मन से लड़ते हैं, महाभारत पढ़ कर नहीं। महाभारत पढ़ेंगे तो धर्म को कुछ समझेंगे। आपको पता है, द्रौपदी हमारी महासतियों में से मानी जाती हैं और सती की हमारे यहाँ परिभाषा है कि पुत्र जन्म के बाद भी जिसका पति के प्रति प्रेम कम न हो। द्रौपदी वह थी जो अपने पुत्रों को छोड़कर अपने पतियों के साथ वन गई।...

ईशान महेश : मेरा एक व्यक्तिगत प्रश्न ... क्या आपको ईश्वर के दर्शन हुए हैं ? क्योंकि 'तोड़ो, कारा तोड़ो' - जिससे मैं इतना अभिभूत हो जाता था और बाकी सब भी, जिस-जिसको दिया। कई ऐसे लोग जो घोर नास्तिक माने जाते थे, उनको मैंने वे खंड पढ़वाए तो वे मेरे पीछे पढ़ गए कि तुम भी जरा सर से यह प्रश्न पूछो। हालांकि शास्त्र कहते हैं कि जो दैवी दर्शन करता है, वह इस बात को छुपाकर रखता है। तो ...?

डॉ. नरेन्द्र कोहली : तुम्हारे ही समान कुछ और लोगों ने भी मुझसे पूछा है कि क्या मुझे कोई दिव्य अनुभूति हुई है ? मैं उसी भगवान् की शपथ खा करके, पूरी निष्ठा से, पूरी ईमानदारी से, आपसे कहता हूँ कि मुझे किसी प्रकार की कोई दिव्य अनुभूति नहीं हुई है। उपन्यास में जो कुछ भी आपको प्रभावित करता है, वह केवल कला से उत्पन्न भ्रम है; और अगर वह उत्पन्न हो गया है, तो मैं मान लूंगा कि मेरी कला ने कुछ कौतुक दिखाया है; अन्यथा मैं स्वयं कामना करता हूँ कि ऐसी कोई अनुभूति मुझे हो, जिससे मेरा आगे का मार्ग खुले। पर आज तक ऐसी कोई अनुभूति मुझे नहीं हुई। कहते हैं कि कोई दिव्य अनुभूति होती है, तो उसके साथ कुछ आदेश भी होते हैं। यदि वे आदेश हुए तो उनके अनुसार कार्य भी करूंगा। जब होगा, तब देखा जाएगा। अभी से मैं क्या प्रतिज्ञा कर सकता हूँ।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: कोहली जी। श्रोताओं में से एक और प्रश्न।

एक श्रोता : कोहली जी, आपने अभी फरमाया कि आपको ऐसी कोई दिव्य अनुभूति नहीं हुई है, लेकिन जिस प्रकार आपने प्रभावित होकर लिखा तो मैं समझता हूँ कि वह भी एक दिव्य अनुभूति ही है, जिससे आप इनकार कर रहे हैं। मैं भी लिखता हूँ और मुझे कुछ ऐसा महसूस होता है कि जब कलम से कोई चीज निकलती है तो वह एक ताकत है, एक शक्ति है, जो हममें संचार करती है और हमारी कलम को मजबूत करती है कि वह लिख जाए।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: कोहली जी, आपने इस ओर संकेत किया था कि किसी अज्ञात प्रेरणा ने आपसे लिखवाया।

डॉ.नरेन्द्र कोहली : वह ठीक है। वह लेखकीय एकाग्रता है, जिसमें आप लिखते चले जाते हैं। इसमें मेरा आपसे कोई मतभेद नहीं है। आपका कहना सही है, मैं आपका विरोध नहीं करूंगा। पर ईशान महेश जो पूछ रहे हैं वह तो इस रूप में कि मुझे भगवान् के दर्शन हो गए क्या ? इन दोनों में अंतर है। मुझे वैसी कोई दिव्य या अलौकिक अनुभूति नहीं हुई। बाकी लेखक हूँ, एकाग्रता के बिना लिख नहीं सकता। और एकाग्रता का जो फल होता है वह तो कला के रूप में आता ही है।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: आत्मरचना के बारे में आपने चर्चा की थी। हम चाहेंगे कि यदि उसका कोई अंश इस समय आपके

पास हो !

डॉ. नरेन्द्र कोहली : नहीं, उस रचना का तो कोई अंश मैं लाया नहीं। कुछ और है। आप कहें तो सुना सकता हूँ।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: सुनाइए।

डॉ. नरेन्द्र कोहली : 'महासमर' के पहले खंड बंधन में से मैं आपको एक अंश सुनाता हूँ।

डॉ. कोहली ने बंधन में से सत्यवती और पराशर के प्रेम-प्रसंग संबंधी एक अंश सुनाया।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: वाह ! वाह ! क्या शैली है। मुझे मालूम नहीं, गद्य गीत किसे कहते हैं; और आपने उस रूप में लिखा या नहीं; लेकिन जो प्रवाह आपकी शैली में है, लगता है, सचमुच आपने साध लिया है।

बलराम अग्रवाल : कोहली जी, कुछ ऐसा समय बीच में आया है या हो सकता है, अभी भी हो कि पूजा को हेय समझा जाता है कि यह आदमी पूजा क्यों करता है ! इस पर जरा प्रकाश डालें।

डॉ. नरेन्द्र कोहली : आपका प्रश्न व्यक्तिगत रूप से मुझसे संबद्ध नहीं है। यह एक व्यापक प्रश्न है, जिसका संबंध इतिहास से है। वस्तुत: यूरोप में, विशेष रूप से मध्यकालीन यूरोप में वहाँ के चर्च ने बहुत सारे दुष्कृत्य किए, जिनमें किसी को डायन कहकर जला देना और किसी को स्वर्ग में जमीन का प्लॉट या फ़्लैट दिलवाना जैसे अंधविश्वासी पाखंड सम्मिलित थे। परिणामत: वहाँ के समाज की प्रतिक्रिया यह हुई कि जो कुछ भी चर्च कहता है, हम उसका विश्वास तभी करेंगे, जब उसका प्रमाण खोज लेंगे। इस प्रवृत्ति को विज्ञान का नाम दिया गया। चर्च से संबंधित बातें गर्हित मान ली गईं। पूजा को भी उसी श्रेणी में डाल दिया गया, क्योंकि उसका संबंध चर्च से था। हमारे यहाँ तो अध्यात्म और विज्ञान में कोई विरोध नहीं रहा है। हमने कभी नहीं माना कि अध्यात्म विज्ञान का विरोधी है या विज्ञान अध्यात्म का विरोधी है। हमारा इतिहास इसको प्रमाणित करता है। हमारे देश की वर्तमान शिक्षा पश्चिम से आई है। विज्ञान के नाम पर यह अहंकार हुआ कि हम यह प्रमाणित कर सकते हैं। विज्ञान के अतिरिक्त दूसरी बातें ... अध्यात्म, धर्म, पूजा-पाठ इत्यादि जो सूक्ष्म के प्रति है, जिसको आप प्रमाणित नहीं कर सकते, उसको हेय दृष्टि से देखा गया। वैज्ञानिक शिक्षा के नाम पर यह हुआ कि यह-यह प्रमाणित हो सकता है। अत: वही मान्य है। आज हम स्वतंत्र हैं; किंतु पाठ्यक्रम तो हमारा आज भी पश्चिम वाला ही है। जब हम खगोलशास्त्र की बात करेंगे, तो वराहमिहिर के नाम पर चाहे कितना गर्व कर लें; किंतु उसको हम पढ़ाते नहीं हैं। हमने अपने किसी गौरव-ग्रंथ को अपने वर्तमान पाठ्यक्रम में सम्मिलित नहीं किया है। यही कारण है कि अपने सारे क्रिया-कलाप के विषय में एक हीन-भावना, हीनता-बोध, उत्पन्न हुआ है। अत: पाश्चात्य शिक्षा-पद्धित से आए व्यक्ति के लिए यह कहने के लिए बहुत आत्मबल चाहिए कि हां, मैं पूजा करता हूँ। कुछ लोग बहुत बलपूर्वक, कुछ अहंकार से यह कहते हैं कि आप ईश्वर को प्रकट दिखाइए। अब दिखाने की बात है तो कंप्यूटर की इतनी सी फ़लौपी होती है। उसमें एक वर्ग इंच पर पाँच सौ पृष्ठ लिखे हुए होते हैं। मैं वह फ़लौपी जिसको डिस्क कहते हैं, उनको दे देता हूँ कि लो, मुझे दिखाओ कि इसमें पाँच सौ पृष्ठ कहाँ हैं। वे कहेंगे, इसके लिए कंप्यूटर चाहिए। मैं भी कहूँगा, भगवान को देखने के लिए भी आपको पूरा यंत्र चाहिए, एक पूरी साधना चाहिए। आप यह नहीं दिखा सकते, तो उसको क्या दिखाएँगे।

अत: आपका यह कहना सही है। विशेषकर उत्तर भारत में हमने देखा है कि पूजा-पाठ को हीन भाव से देखा गया है। लेकिन जब आप कुछ समझदार हो जाते हैं, जीवन की गहराई में उतरते हैं, दृष्टि सूक्ष्म होती है, स्थूल के पीछे भी देखते हैं, तो ईश्वरीय सत्ता का आभास आपको होने लगता है।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: यह जिस तरह की बात आपके वक्तव्य में आई ...

डॉ. नरेन्द्र कोहली : इससे मैं थोड़ा भयभीत हो जाता हूँ कि इसके बाद कहीं अध्यात्म चर्चा न शुरु हो जाए।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: हालांकि मूलत: अध्यात्म और साहित्य में कोई अंतर नहीं है। महाभारत और रामायण साहित्य भी हैं, महाकाव्य भी हैं और उसी में हमारा अध्यात्म भी है। और आपने भी लगभग वही किया है। इन दिनों बार-बार चर्चा होती है, शब्द की सत्ता की। इलेक्ट्रॉनिक माध्यम, पश्चिमी संस्कृति और बाजारवाद की। उपभोक्तावाद की चर्चा, जिसके कारण पुस्तकें कहीं पीछे पड़ रही हैं। ऐसी स्थिति में पुस्तक की और शब्द की आज क्या स्थिति है ?

डॉ. नरेन्द्र कोहली : मुझे लगता है कि हम बहुत जल्दी अदभुत निष्कर्षों पर आ जाते हैं। नारे उछाल दिए जाते हैं और हम उसके पीछे चल पड़ते हैं। कुछ वैसा ही शब्द और पुस्तक के साथ हो रहा है। अधिकांश लोग यह मानते हैं कि चूंकि हर घर में टी.वी. है और लोग टी.वी. देख रहे हैं, इसलिए वे पुस्तकें नहीं पढ़ते हैं। मेरा प्रश्न यह होता है कि जितने लोग टी.वी. देख रहे हैं, यदि टी.वी. हटा दिया जाए तो क्या वे सब पुस्तकें पढ़ने लगेंगे ? क्या टी.वी. आने से पूर्व वे सब लोग पढ़ते ही थे ? कितनी संख्या थी लोगों की पढ़ने वाली ? पुस्तकें जब थीं और टी.वी. नहीं था, तब लोग नाटक देखने जाते थे, रासलीला देखने जाते थे, रामलीला देखने जाते थे, सिनेमा देखते थे। सब लोग पुस्तक नहीं पढ़ते। जिसको पढ़ना है, वह तो पढ़ेगा ही, मैं यह मानता हूँ। एक बात मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि जब मुद्रण नहीं होता था, तब पुस्तकें नहीं थीं। हाथ से लिखी जाती थीं तो बहुत कम प्रतिलिपियाँ होती होंगी। उस समय शब्द का महत्व था। लोग इकट्ठे बैठते थे, कथावाचक कथाएँ सुनाते थे, कवि लोग कवि सम्मेलन करते थे, वाचिक परंपरा थी। जैसे ही प्रेस आया, लोगों को लगा होगा कि वह सब तो समाप्त हो गया। कवि-सम्मेलन भी समाप्त हो गए, कथा वाचक भी समाप्त हो गए। पर शब्द की महत्ता तो समाप्त नहीं हुई न। केवल स्वरूप बदला। पहले लिपि भी नहीं थी, तब भी शब्द था। लिपि आई, तब भी शब्द था। मुद्रण आया तब भी शब्द है; और आज अगर आप यह मान लें कि मुद्रित साहित्य समाप्त हो जाएगा ... मैं तो नहीं मानता, किंतु मान लें कि यदि ऐसा हो गया, तो टी.वी. पर जो भी कार्यक्रम आएँगे, सल्यूलाइड पर ... क्या उसके लिए शब्द नहीं चाहिए ? पहले शब्द लिखे जाएँगे, बाद में दिखाए जाएँगे। कंप्यूटर तक के लिए पहले सॉफ़्टवेयर बनाते हैं। हमने जब कहा कि शब्द ब्रह्म है

तो वह ब्रह्म है। उसमें किसी प्रकार के संदेह की मुझे कोई गुंजाइश नहीं लगती। आरंभ में जैसे तुमने मुझसे पटकथा को ले कर पूछा ... आखिर लेखक तो पटकथा के लिए भी चाहिए ही। तो लेखक का महत्व, विचार का महत्व, शब्द का महत्व, समाप्त नहीं होगा। ऊपरी रूप बदलता रहता है; किंतु मूल तत्व - शब्द कभी समाप्त नहीं होता।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: चलिए, मैं आपकी बात मान लेता हूँ। लेकिन साहित्य के प्रति थोड़ी सी प्रवृत्ति शायद धीरे-धीरे विश्वविद्यालय के छात्रों में भी कम हो रही है और अन्यथा भी।

डॉ. नरेन्द्र कोहली : मैं सहमत न होने के लिए क्षमा भी नहीं चाहूँगा; पर मैं सहमत नहीं हूँ। मैं इसको दूसरे रूप में देखता हूँ। हमारी भारतीय भाषाओं के साथ जो हुआ है, वह यह कि पढ़े-लिखे परिवारों की अगली पीढ़ी अंग्रेजी माध्यम से पढ़ रही है। इसलिए जब वे बच्चे पुस्तक खरीदते हैं, तो वे अंग्रेजी की पुस्तक खरीदते हैं, अंग्रेजी की पुस्तक पढ़ते हैं। आपको लगता है कि पाठक कम हो रहा है डॉ. नरेन्द्र कोहली : मैं सहमत न होने के लिए क्षमा भी नहीं चाहूँगा; पर मैं सहमत नहीं हूँ। मैं इसको दूसरे रूप में देखता हूँ। हमारी भारतीय भाषाओं के साथ जो हुआ है, वह यह कि पढ़े-लिखे परिवारों की अगली पीढ़ी अंग्रेजी माध्यम से पढ़ रही है। इसलिए जब वे बच्चे पुस्तक खरीदते हैं, तो वे अंग्रेजी की पुस्तक खरीदते हैं, अंग्रेजी की पुस्तक पढ़ते हैं। आपको लगता है कि पाठक कम हो रहा है ... पाठक का भाषांतरण हो रहा है। उसके लिए आपको यह पूछने की जरूरत है कि आपके देश के सारे विश्वविद्यालय अंग्रेजी में ही शिक्षा क्यों दे रहे हैं ? मैं केवल हिंदी की बात नहीं कर रहा हूँ। सारी भारतीय भाषाओं के सामने जो सबसे बड़ा संकट है वह यह है कि हिंदी-भाषी करोड़ों हैं, पर अधिकांश अनपढ़ हैं। अब जो थोड़े से पढ़े-लिखे हैं, वे तब तक हिंदी पढ़ते हैं, जब तक कि अंग्रेजी नहीं पढ़ लेते। जिस घर में, जिस व्यक्ति में, जितनी अंग्रेजी प्रवेश पा जाती है...उतनी वहाँ से उसकी अपनी भाषा, चाहे वह किसी भाषा का व्यक्ति हो, निष्कासित हो जाती है, खारिज हो जाती है। जो संकट है, वह अंग्रेजी की ओर से है। पुस्तक पढ़ने और न पढ़ने का मुझे कोई संकट नहीं लगता। पुस्तक मेला लगता है, आप देखिए कि कितने लोग जाते हैं, कितनी पुस्तकें खरीदी जाती हैं। जो बात मैं कह रहा हूँ, उसका प्रमाण यह है कि हिंदी की पाँच सौ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य तीन सौ रूपये भी होता है तो भी हिंदी का पाठक कहता है ... बाप रे ! इतनी महंगी पुस्तक। अभी मैंने अपने बच्चों के लिए पुस्तकें खरीदी हैं। उनका कहना है कि वह पुस्तक उनको अंग्रेजी में ही चाहिए क्योंकि हिंदी में उसका अनुवाद नहीं हुआ है। वह पुस्तक सौ पृष्ठ की है, पेपर बैक में है, और उसकी कीमत सात सौ रुपये है। वह किसी को महंगी नहीं लगती। कहते हैं, इतने डॉलर, ओ-हो ... यह तो बहुत सस्ती है। तो इन सबके कारण दूसरे हैं और हम उनको केवल टी.वी. पर थोप रहे हैं। मैं नहीं मानता कि साहित्य का, शब्द का, विचार का या लेखक का महत्व कम हुआ है।

डॉ.अवनीजेश अवस्थी: ये संस्कार तो परिवार को ही बच्चों को देने हैं। कोहली जी, बाल साहित्य भी आपने लिखा है। बाल-साहित्य अब साहित्य न हो कर, केवल जानकारी के रूप में ज्यादा बिकता है।

डॉ. नरेन्द्र कोहली : अब क्या ज्यादा बिकता है, इसके आंकड़े मेरे पास नहीं हैं। मैं यह मानता हूँ कि एक रचना जो मैं लिखता हूँ, उसके लिखने से पहले मैं नहीं सोचता कि वह क्या बनेगा। लिखने के बाद जब मैं देखता हूँ कि यह तो किशोरों के लिए है, तो ठीक है ... किशोर साहित्य हो गया। साहित्य लिखने से पहले विधा सोचने का मैं बिल्कुल समर्थक नहीं हूँ। बाकी रही यह बात कि ज्ञान का साहित्य अधिक बिकता है ...हो सकता है कि आपका कहना सही हो। व्यक्ति को लगता है कि मजबूरी में वह पंद्रह सौ रुपये का जूता खरीद सकता है; पर पुस्तक पाँच सौ रुपये की नहीं खरीदता। कारण एक तो यह है कि पैसा कम है, दूसरा उसकी प्राथमिकता में पुस्तक बहुत नीचे है।

डॉ. अवनीजेश अवस्थी: बहुत-बहुत धन्यवाद नरेन्द्र कोहली जी। आज आपसे बातचीत करके हमने साहित्य पर, अध्यात्म पर, अपनी परंपरा और समूचे भारतीय वांग्मय पर जो जानकारी हासिल की, पूरे ज्ञान के लिए हम सब आपके बहुत-बहुत आभारी हैं। धन्यवाद।

डॉ. नरेन्द्र कोहली : मुझे आपने अपनी बात कहने का अवसर दिया, इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। धन्यवाद।

डॉ. कोहली अपनी धर्मपत्नी डॉ. मधुरिमा कोहली के साथ प्रकृति के आँचल में शीतल ,श्वेत वर्फीली चोटियों का आनन्द लेते हुये ।

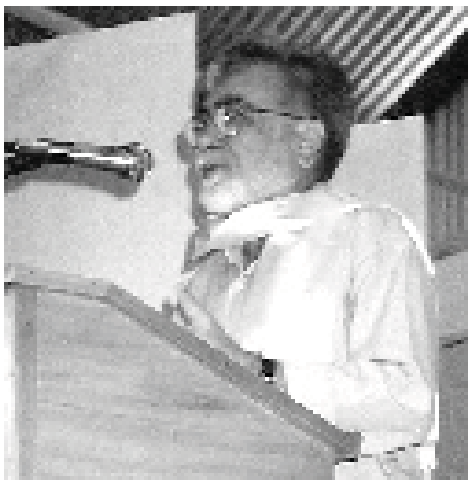

डॉ. नरेन्द्र कोहली जी २ मई २००२ में महाकवि प्रो. आदेश के ट्रिनिडाड आश्रम में अपना वक्तव्य देते हुये।

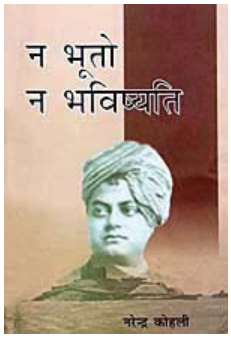

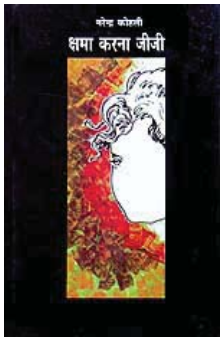

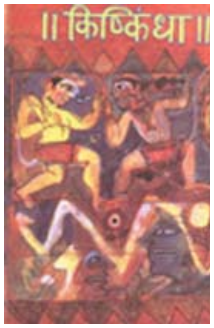

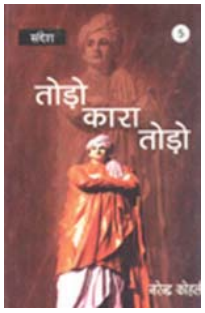

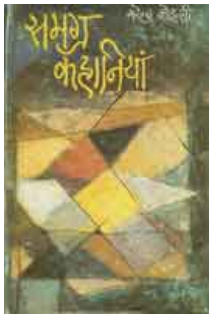

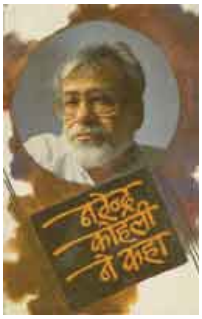

नोट : अब आपको डॉ. कोहली का साहित्य घर बैठे प्राप्त हो सकता है। पता : - www.pustak. org

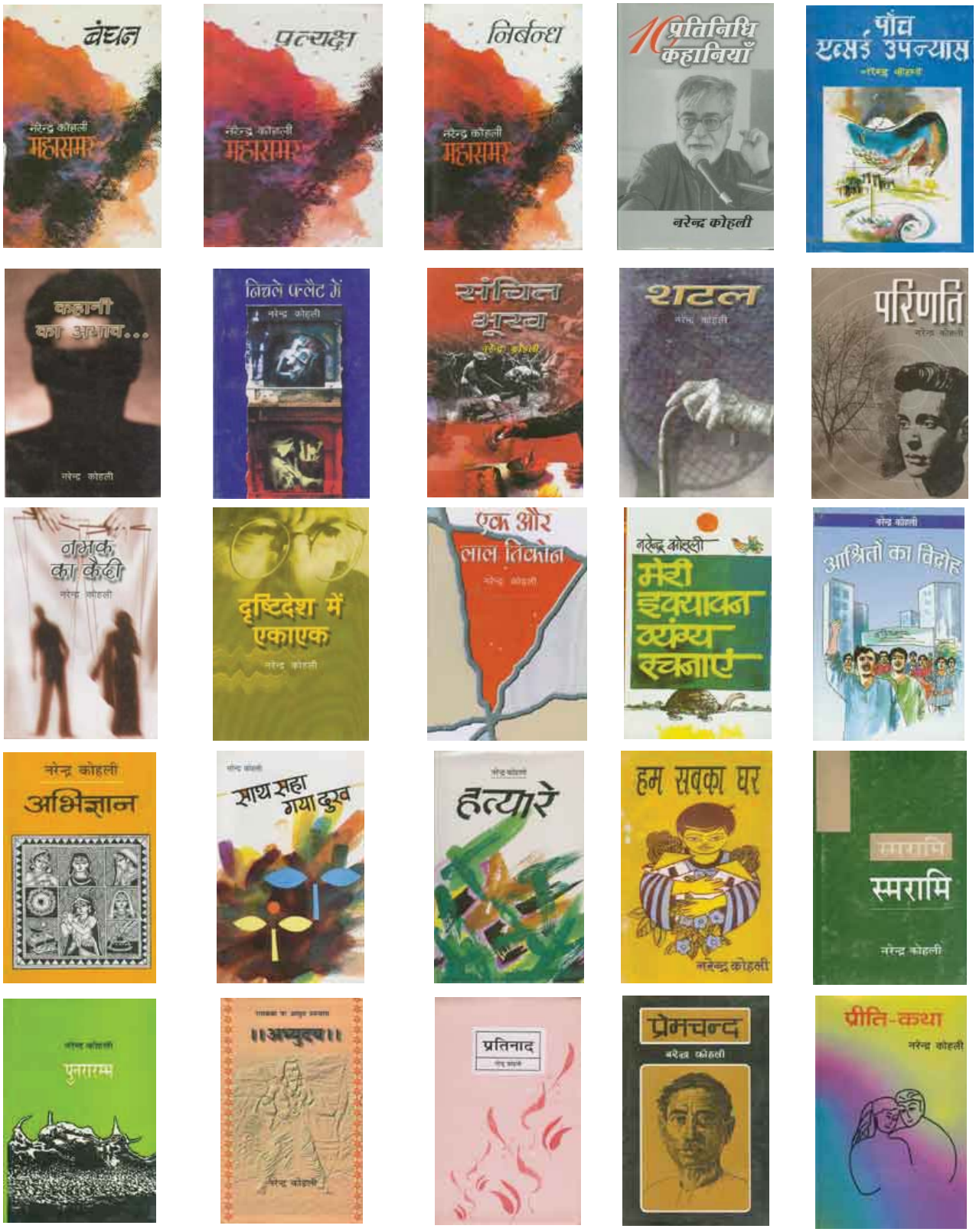

नोट : अब आपको डॉ. कोहली का साहित्य घर बैठे प्राप्त हो सकता है। पता : - www.pustak. org

■ चित्रकाव्य-कार्यशाला

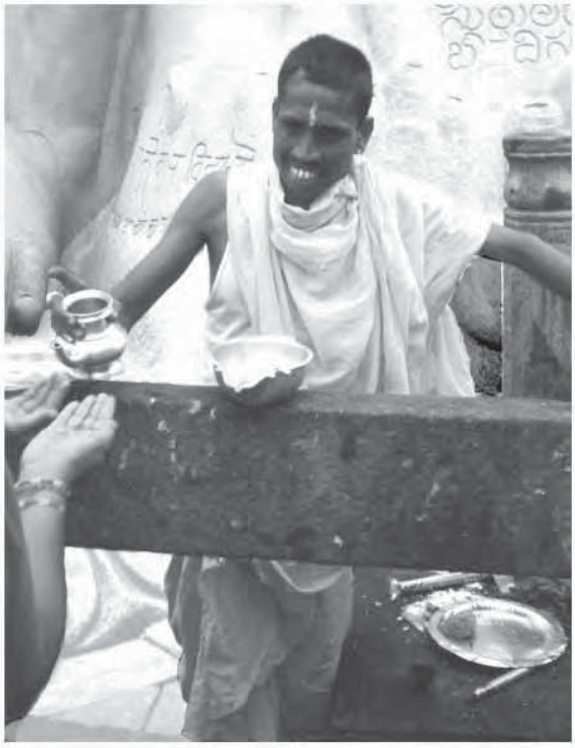

●

गागर में सागर भरने की सुनते रहते हम ये बात
गागर क्या! इक पानी के लोटे में है यह करामत
भगवान को अर्पित किया पानी, जब चरणामृत है बन जाता
दो बूंद उसकी पानी को, भगत है अपने हाथ बढाता
भगवान का प्रशाद समझकर मिल जाती है सन्तुष्टि
अमृत कोई पानी समझे, सबकी अपनी अपनी दृष्टि

सुरेन्द्र पाठक (कैनेडा)

●

तन तो जल से शुध्द हुआ, मन भी कर लो साफ!
प्रभु कृपा हो जाएगी, मिट जाएंगे सब संताप!!

ऊषा देव (अमेरिका)

●

माथे लगा के टीका
कई बेईमान मिल गए
भक्तों को बांटते प्रसाद
कई नादान मिल गए!

सुधा (अमेरिका)

●

सदियों से वो बांट रहें हैं, यूं ही मजहब का प्रसाद
ऊँच नीच का मिटा न लेकिन उनके मन से विषाद

कब तक ये अंधेर चलेगा, धर्म का कारोबार चलेगा
कब होगा सुर्योदय प्यारा, कब होगी रूह आबाद

चली कहाँ से कहाँ पहुँच गई, ज्ञान की बहती गंगा
मगर अभी भी कहीं कहीं तो वही छुआ छूत का स्वाद

धर्म के रहबर यदि दिखलायें राह सीधी और सच्ची
सुख शान्ति और प्रेम से फिर मानवता रहे आबाद

निर्मल सिध्दु (कैनेडा)

■ चित्रकाव्य-कार्यशाला

इस चित्र को देखकर आपके मन में जो भी भाव आयें उन्हें अधिक से अधिक छः पंक्तियों के अन्दर व्यक्त करके भेजें।

चित्र –में बिहार के प्रसिद्ध कहानीकार श्री राधाकृष्ण प्रसाद के साथ हिन्दी चेतना के संपादक।

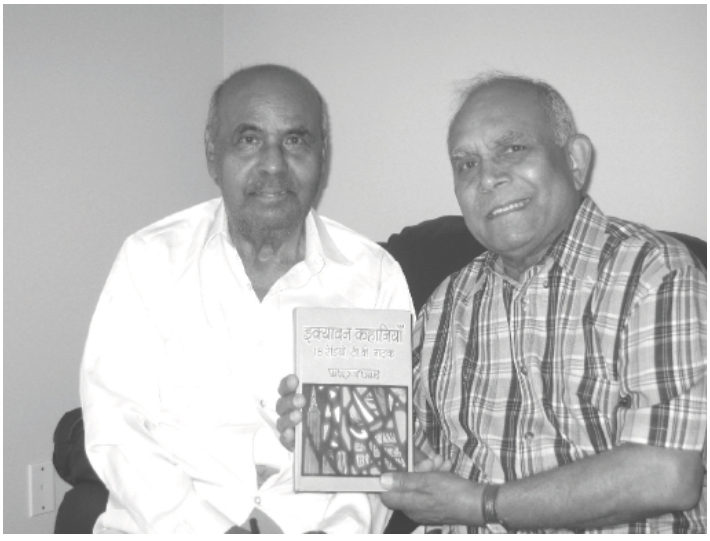

चित्र– में श्री राधाकृष्ण प्रसाद की इक्यावन कहानियों की पुस्तक श्याम त्रिपाठी प्रदर्शित करते हुये।

यथार्थवाद की छाया में पुराणों का उपन्यासों में ढलना

– नरेन्द्र कोहली

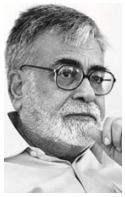

1972 ई. में मेरा उपन्यास 'आतंक' प्रकाशित हुआ था, जिसमें समकालीन जीवन के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक आतंक के नीचे डरे सहमे लोगों का चित्रण किया गया था। उस आतंक के मूल में थी सत्तालिप्त राजनीति। मित्रों ने शिकायत की कि उपन्यास में शोषणचक्र चलाने वाली दमनकारी राजनीतिक सत्ता तो है, किंतु उसके विरोध में शस्त्र लेकर उठ खड़े होने वाले जुझारू लोग नहीं हैं। एक गोष्ठी में उपन्यास पर आरोप लगाया गया कि नायक के हताश हो जाने तथा एकमात्र जूझारु पुलिस अधिकारी के स्थानांतरित कर दिए जाने से, उपन्यास के अंत में निराशा छा जाती है। समीक्षकों और पाठकों का मत था कि सघन निराशा के मध्य भी आशा की एक मशाल जलनी ही चाहिए। ऐसा नायक होना ही चाहिए, जो अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष कर, समाज को बल दे, प्रेरित करे, उकसाए। साहित्य समाज को हताश करने के लिए नहीं, उसे ऊर्जा देने के लिए होता है।

ऐसा नहीं कि मैं यह जानता अथवा मानता नहीं था ; किंतु यथार्थ चित्रण करने वाला उपन्यासकार ऐसे चरित्रों को कैसे प्रस्तुत करे, जो उसके समकालीन जीवन में हों ही नहीं। आज के युग में लोगों का विश्वासभाजन जैसा जुझारु चरित्र हमें चाहिए, वैसा कहीं है ही नहीं- अत: उसका निर्माण करना होगा। ऐसे में लेखक का मन या तो फंतासी की ओर मुड़ता है,या मिथक, पुरा-कथाओं अथवा इतिहास की ओर। फंतासी का प्रयोग मैं ने 'आश्रितों का विद्रोह' में किया था ; किंतु उससे पाठक का तादात्म्य ऐसा नहीं था, जो मुझे उसके पुनर्पयोग के लिए उत्साहित करता। मेरा मन ऐसे संघर्षशील नायकों को खोजता हुआ, गांधी से लेनिन, माओत्सेतुंग तथा हो चि मिन्ह तक गया ; किंतु गांधी ने कभी शस्त्र उठाया नहीं था ; और अन्य लोग विदेशी थे। हमारे परिवेश तथा संस्कार एक दूसरे से पर्याप्त भिन्न थे। बुद्धि को ग्राह्य होते हुए भी मेरा सर्जक मन नकार में सिर हिला रहा था ; और कहीं यह भी लगता था कि पाठक की संवेदना भी, परिवेश, संस्कार और परंपरा की भिन्नता, नवीनता तथा अपरिचय के कारण शायद उनके साथ तादात्म्य न कर पाए।

हमारे कॉलेज के फाटक पर ढाई-तीन सौ लड़कों की उपस्थिति में एक लड़के ने दूसरे पर चाकू के तीन वार किए। वह इस प्रयत्न में था कि उसकी हत्या ही कर दी जाए। मैं अध्यापक था, अत: अपनी सारी भीरुता के बावजूद उसे अपने दो छात्रों का झगड़ा मानकर बीच -बचाव करने के लिए पहुंच गया। चाकू मारने वाला लड़का भाग गया। घायल लड़का अस्पताल पहुंचा दिया गया। मैं भयभीत मन से तीन दिन तक प्रतीक्षा करता रहा कि कब पुलिस पूछताछ के लिए मेरे पास आएगी ; और मैं उसे क्या बताऊंगा। झूठ मैं बोलना नहीं चाहता और सत्य बोलना संकट का काम था ; अत: साहस नहीं हो रहा था।... किंतु पुलिस नहीं आई। जब पुलिस नहीं आई ; और मेरा भय समाप्त हो गया तो जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि पुलिस क्यों नहीं आई? पता चला कि चाकू मारने की योजना बनते ही पुलिस को उसकी सूचना दे दी गई थी और उनका शुल्क भिजवा दिया गया था। इसलिए यह पहले से ही तय था कि पुलिस वहां नहीं आएगी।

मुझे लगा कि मैं समाज में हूं, पर समाज कहीं नहीं है। कोई भी किसी व्यक्ति को सैकड़ों लोगों की उपस्थिति में चाकू मार सकता है। पुलिस है ; किंतु पुलिस कहीं नहीं है। वह पैसा लेकर चाकू मारने वाले के गिरोह में मिल जाती है। उसकी पक्षधर हो जाती है। देश में सरकार है ; किंतु शासन कहीं नहीं है।...

मुझे महर्षि विश्वामित्र स्मरण हो आए। वे राजा रहे थे, राजर्षि थे। शस्त्रों के ज्ञाता थे। सैन्य संचालन कर सकते थे ; किंतु फिर भी उनके आश्रम में राक्षस अपनी मनमानी कर रहे थे। जब इच्छा होती थी, रक्त और मांस का खेल खेल जाते थे। इतना आतंक फैला देते थे कि वहां अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ-योग, पूजा-उपासना, साधना-तपस्या कुछ भी न हो सके। उनका आश्रम जिस क्षेत्र में था, वहां के राज्य - मलद और करूष - राक्षसों के उदर में समा चुके थे। एक ओर चक्रवर्ती सीरध्वज जनक का राज्य था और दूसरी ओर चक्रवर्ती दशरथ का ; किंतु वे दोनों ही चतुरंगिणी सेनाओं के स्वामी होकर भी सिद्धाश्रम की रक्षा नहीं कर पा रहे थे। वहां भी न समाज था, न पुलिस थी, न शासन था, न राजा था - पूर्ण अराजकता थी। जिसके पास भी शारीरिक बल और दुष्ट बुद्धि हो, वह अपनी मनमानी कर सकता था। ऐसे में ऋषि विश्वामित्र, राम की शरण में आए थे।

रक्तपात की एक घटना तो बहाना थी। वस्तुत: अपने समाज, पुलिस, और सरकार से निराश होकर मैं ऋषि विश्वामित्र की ओर आकृष्ट हुआ था। परिस्थितियों की दृष्टि से मैंने स्वयं को उनके बहुत निकट पाया था। मुझे और मेरे समय को भी श्रीराम की आवश्यकता थी, जो इंद्र और रूढ़िबद्ध सामाजिक मान्याओं की सताई हुई, समाज से निष्कासित, वन में शिलावत् पड़ी, अहल्या के उद्धारक हो सकते ; जो ताड़का और सुबाहु से संसार को छुटकारा दिला सकते ; मारीच को योजनों दूर फेंक सकते ; जो शरभंग के आश्रम में 'निसिचरहीन करौं महि', का प्रण कर सकते ; संसार को रावण जैसी अत्याचारी शक्ति से मुक्त करा सकते।

उस समय राम मेरे लिए शुद्ध रूप से संसार की एक ऐसी सर्वोपरि सात्विक शक्ति थे, जो अत्याचारियों के काल थे, जो दलितों और पीड़ितों के सहायक थे। संसार में धर्मपरायण लोगों के जीवन, धन और सम्मान की रक्षा कर सकते थे। वे सत्य और धर्म के योद्धा थे। उनके लिए गोस्वामी जी ने एकदम सत्य कहा था : 'विप्र, धेनु, सुर, संत हित लीन्ह मनुज अवतार।' वे परम रक्षक थे - सब के रक्षक थे, इसलिए मेरे भी रक्षक थे। इससे अधिक मैंने कुछ नहीं सोचा था।

अंतत: 'आतंक' के संवेनदनशील किंतु कर्म में असमर्थ बुद्धिजीवी डॉ. कपिला रामकथा के विश्वामित्र में परिणत हो गए। डॉ.कपिला का कॉलेज, या आज के किसी भी विश्वविद्यालय का परिवेश सिद्धाश्रम में परिवर्तित हो गया और आज के धन तथा सत्तासंपन्न वर्ग की गुंडागर्दी सिद्धाश्रम में ताड़का, मारीच और सुबाहु की गुंडागर्दी में बदल गई। आज के विश्वविद्यालय के लिए मैं शस्त्रधारी डॉ. कपिला का निर्माण नहीं कर सकता था ; किंतु सिद्धाश्रम में राम सरलता से जनवाहिनी बना कर राक्षसों पर सशस्त्र आक्रमण कर सकते थे।

बिहार के एक गांव में धन तथा सत्तासंपन्न लोगों द्वारा निर्धन केवट कन्याओं के साथ बलात्कार करने तथा उनकी रक्षा को आए उनके परिजनों को जीवित जला देने के समाचार आए थे। अपराधियों के आतंक के कारण न किसी चिकित्सक ने घायलों के घावों का उपचार करने का साहस किया और न किसी पुलिस अधिकारी ने रपट ही लिखी थी। मेरे सर्जक मन ने उस घटना का रूप बदला। वे पीड़ित परिवार, गहन केवट के परिवार में बदले। राम से साहस पाकर वे सेनापति बहुलाश्व के पुत्र देवप्रिय को पकड़ लाए और राम ने भ्रष्ट सत्ताधारी के विलासी पुत्र को मृत्युदंड देते हुए लक्ष्मण को आदेश दिया कि वे उसका वध कर दें और पुत्र को बचाने के लिए सैनिकों सहित आए हुए विद्रोही सेनापति बहुलाश्व को उन्होंने स्वयं अपने हाथों मार डाला।

वर्तमान युग में भ्रष्ट सत्ताधारियों के विलासी पुत्रों की हत्या दिखाना अयथार्थ होता। अभी तक उनमें से किसी को भी किसी भी रूप में दंडित नहीं किया जा सका है। किंतु सर्जक मन अपनी इच्छा, आक्रोश, योजना तथा समाधान को पौराणिक कथा के पर्दे में स्पष्ट कह गया।

अब मेरा सर्जक मन रामकथा को अपने परिवेश में देख रहा था। उसे इस कथा के माध्यम से अपनी बात कहने की अद्‌भुत संभावनाएं दिखाई पड़ रही थीं। परिवर्तन की आवश्यकता मुझे नहीं थी- केवल देखने की अपनी दृष्टि को बनाए रखने की बात थी। बंगलादेश में पाकिस्तानियों द्वारा सी.आई.ए. की सहायता से वहां के बुद्धिजीवियों की योजनाबद्ध हत्याएं,रावण द्वारा ऋषियों की हत्याओं का अर्थ स्पष्ट कर रही थीं। उन्नत सैनिक शक्ति, धन, प्रभुता तथा सत्ता से संपन्न और शिव और ब्रह्मा के वरद हस्त के नीचे सोने की लंका में सुरक्षित बैठा रावण किसी भी साम्राज्यवादी, पूंजीवादी महाशक्ति से भिन्न नहीं था। राक्षसों के भय की छाया में पलने वाले, उनके हस्तक्षेपपीड़ित वानर राज्य, उन पिछड़े हुए छोटे देशों का रूप थे, जो महाशक्तियों के हस्तक्षेपों तथा अत्याचारों से परेशान रहते हुए भी कुछ कर नहीं सकते। ताड़कावन, चित्रकूट, दंडकवन तथा पंचवटी के राक्षस सैनिक स्कंधावार आज के दुर्बल देशों, छोटे द्वीपों और अधीनस्थ देशों में स्थापित साम्राज्यवादी सैनिक अड्डों से एकरूप थे। इंद्र तथा देव शक्ति एक ऐसी विकसित तथा उन्नत महाशक्ति थी, जो अपनी प्रतिबद्धता के विरुद्ध अपने स्वार्थी तथा विलासी दृष्टिकोण के कारण, मित्रता की आड़ में शोषण करती थी।

इस दृष्टि से मेरा सर्जक मन राम के राज्याभिषेक के प्रसंग से भी बहुत जूझता रहा। दशरथ की राम के युवराज्याभिषेक की व्याकुलता और उसमें असफल होने पर मृत्यु को प्राप्त हो जाना-- यह सारा प्रसंग जिज्ञासु मन में अनेक प्रश्न ही नहीं उठाता, सर्जक मन को सृजन के लिए पर्याप्त अवकाश भी देता है। मुझे वर्तमान राजनीतिक स्थिति के प्रकाश में देखने पर इसका कुछ और ही रूप दिखाई दिया। वाल्मीकीय रामायण में दशरथ संध्या समय राजसभा में राम को युवराज बनाने की इच्छा प्रकट करते हैं। सभा का अनुमोदन पाकर राम को बुला कर आदेश देते हैं कि वे अपना अभिषेक करवा लें और गुरु वसिष्ठ की आज्ञा का पालन करें । किंतु थोड़ी ही देर पश्चात् राम को पुन: बुला कर कहते हैं, "तुम्हारे मित्र और सुहृद तुम्हें घेर कर सोएं ताकि रात को कोई तुम्हारा अहित न कर सके।" ... प्रश्न है कि दशरथ इतने आतुर तथा भयभीत क्यों थे ? और राम के वन जाने पर कौसल्या तो जीवित रहीं ; किंतु दशरथ जीवित क्यों नहीं रह सके ?

कैकेयी तथा दशरथ के वय का अंतर संकेत करता है कि यह विवाह कैकेयी की इच्छा से नहीं हुआ होगा। निश्चित रूप से यह राजनीतिक विवाह है, जो दशरथ की सैनिक शक्ति के दबाव में हुआ है। मेरे सर्जक मन ने इस सारी स्थिति की कल्पना आज की राजनीतिक परिस्थितियों और मन:स्थिति के प्रकाश में की है। अपने प्रबल सैनिक अभियानों के दिनों में दशरथ ने केकय नरेश को पराजित किया और सैनिक दबाव में कैकेयी से विवाह किया। क्रमश: दशरथ वृद्ध होते गएऔर कैकेयी का भाई युधाजित शक्तिशाली होता गया। दुर्बल होते हुए दशरथ का शंकालु मन अयोध्या में कैकेयी और युद्धाजित की बढ़ती हुई शक्ति से भयभीत है और उन्हें लगता है कि किसी भी दिन राजसत्ता उनके हाथ से छिन सकती है। उनका प्रयत्न आरंभ होता है कि सत्ता उस व्यक्ति को सौंपी जाए, जो उनका अहित न करे। भरत कैकेयी का पुत्र तथा युधाजित का भांजा है ; और उनके प्रभाव में है। वह अपनी मां और मातृकुल के साथ किए गए व्यवहार का प्रतिशोध ले सकता है। शत्रुघ्न, भरत के अनुचर हैं। लक्ष्मण सुमित्रा का पुत्र है और वे मां-बेटा, दशरथ से प्रसन्न नहीं हैं। केवल राम ही ऐसे व्यक्ति हैं, जिनके हाथ में सत्ता देना सुरक्षित है। राम समर्थ हैं और कौसल्या के पुत्र हैं। उनके राजा बनने से दशरथ का कोई अहित नहीं होगा।

रामकथा का जो स्वरूप मेरे मन में उभरता है, उसमें रामकथा की सबसे महत्वपूर्ण घटना राम का वनगमन है। राम वन की ओर प्रस्थान करते हैं तो उनकी माताएं, उन के भाई बंधु, मित्र सुहृद, नौकर चाकर, प्रजा और सेवक सब ही राम से अयोध्या लौट चलने का आग्रह करते हैं। हठ करते हैं। उन्हें मना लाने के लिए दूर तक उन के साथ जाते हैं। किंतु सारी रामकथा में कहीं किसी समर्थ ऋषि ने राम को अयोध्या लौट जाने के लिए नहीं कहा। जब जब राम पूछते हैं कि वे किधर जाएं, तो वे सब उन्हें वन में और आगे, और आगे बढ़ाते चलते हैं ; और अंतत: अगस्त्य उन्हें गोदावरी के तट पर स्थित पंचवटी तक पहुंचा देते हैं, जहां दूसरे तट पर खरदूषण और त्राशिरा के साथ स्वयं शूर्पणखा राक्षस सेना को ले कर जनस्थान में स्कंधावार डाले हुए है। मेरे मन में यह प्रश्न बार बार उठता है कि ऋषियों ने राम को अयोध्या लौट जाने के लिए क्यों नहीं कहा ? कहीं यह ऋषियों की कोई सुविचारित योजना ही तो नहीं थी कि वे राम को रावण से युद्ध करने के लिए प्रेरित करें ? क्या ऋषियों का कोई

ऐसा संगठन था, जो राम जैसे योद्धा को निरंतर रावण के निकट ही नहीं पहुंचा रहा था, राम को राक्षसी अत्याचारों के स्वरूप से परिचित भी करा रहा था ? आखिर उन्हें पहली बार राक्षसी अत्याचार का रूप भी तो विश्वामित्र ने ही दिखाया था। उन्होंने ही उन्हें राक्षसों से लड़ने की दीक्षा दी थी। रामकथा में यह तो अनेक बार कहा गया है कि राम देवताओं का कार्य करने के लिए आए थे। तो यह देवताओं का कार्य ही था, जो ऋषियों द्वारा राम के माध्यम से संपन्न किया जा रहा था ?

इस प्रकार मेरे सर्जक मन ने रामकथा में आधुनिक सामाजिक नैतिकता के प्रश्न को अपने ढंग से सुलझाने का पर्याप्त अवकाश पाया। स्त्री-पुरुष संबंध हमारी सामाजिक नैतिकता के मूल में है। मेरे मन को यह प्रश्न उस दिन से आलोड़ित विलोड़ित कर रहा है, जब दिल्ली में एक श्रीमती शर्मा एक बस में अंतिम सवारी होने के कारण बसचालक और उस के सहयोगी की कुदृष्टि का लक्ष्य बनी थीं। बस चालक और उसके सहयोगी ने श्रीमती शर्मा को अकेली और असहाय पाकर उनके साथ बलात्कार करना चाहा था। श्रीमती शर्मा अपने सम्मान की रक्षा के लिए चलती बस में से कूद गई थीं और उन्होंने अपने प्राण त्याग दिए थे। तब से मेरा मन पूछता है कि ऐसी स्थिति में स्त्री के पास अपने प्राण देने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है ? यदि एक पुरुष को कुछ गुंडे घेर लें और उसके हाथ पैर तोड़ दें तो क्या वह पुरुष दूषित हो जाएगा ? वह पीड़ित न माना जाकर पापी माना जाएगा ? समाज में उस का मान-सम्मान समाप्त हो जाएगा। क्या ऐसी किसी घटना के पश्चात् उसे आत्महत्या कर लेनी चाहिए ? किंतु हम उसे पापी न मान कर पीड़ित मानते हैं। तो फिर ऐसी स्त्री को भी पीड़ित मान कर उसे सहानुभूति क्यों नहीं देते ? इसी प्रश्न के उत्तर की खोज में मैंने अपनी रचना 'नींद आने तक' लिखी थी। रामकथा के विभिन्न खंड लिखते हुए, यह समस्या निरंतर मेरे मन में बनी रही है।

रामकथा में अहल्या की कथा नारी संबंधी अनेक प्रश्नों के समाधान का अवकाश उपलब्ध कराती है। मेरे सामने प्रश्न सीधा था : अहल्या दोषी थी या नहीं थी ? दोषी थी तो राम तथा लक्ष्मण ने जाकर उसके चरण क्यों छुए और निर्दोष थी तो गौतम ने उसका त्याग क्यों किया? पति-पत्नी का यह कौन सा प्रच्छन्न समझौता था, जिसके अन्तर्गत बिना किसी दोष के भी त्यागे जाने पर, अहल्या अपने पति से पुन: मिलने को उत्सुक थी ; अथवा त्याग कर भी दोषी पत्नी को पुन: प्राप्त करने के लिए गौतम आतुर थे ? इन सारे प्रश्नों के आस पास नारी पुरुष संबंधों के विषय में अनेक प्रश्नों के साथ साथ दुर्बल किंतु सत्यप्राण बुद्धिजीवी गौतम तथा विलासी तथा अन्यायी शासक इंद्र का द्वंद्व भी उभर कर मेरे सर्जक मन के सम्मुख आया।

सामूहिक रूप से आर्थिक प्रश्नों को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत करने का अवकाश दंडक वन में रहने वाली निर्धन, अविकसित वानर, ऋक्ष, भील, निषाद इत्यादि जातियों के संदर्भ में आया है-जहां अपने शासकों के स्वार्थ के साथ साथ वे विकसित राज्यों तथा उन्नत जातियों- राक्षसों तथा देवों - दोनों से ही पीड़ित हैं और जाति के रूप में शोषण के पात्र बने हुए हैं।

अपनी कुर्सी पर आंच आने की संभावना के उठते ही किसी भी शासक का क्रूर हो उठना, तथा प्रत्येक संभावित असंभावित विरोधी को पकड़ कर यातना शिविरों में बंद कर उनकी हत्याओं के प्रयत्न तथा वास्तविक हत्याओं का चित्रण खुले रूप से साहित्यकार के लिए संभव नहीं भी हो सकता। आपात्काल जैसी स्थिति में तो वह एकदम संभव नहीं है। किन्तु वाली जब मायावी को मार कर वापस किष्किंधा लौटा तो उसने सुग्रीव को शासक के रूप में वहां प्रतिष्ठित देखा। यद्यपि सुग्रीव ने तत्काल सत्ता वाली को सौंप दी, किंतु सत्ता छिन जाने की संभावना से वाली उसी प्रकार विचलित हुआ होगा, जैसे कोई भी अधिनायक सत्ता छिन जाने के भय से हो उठता है। परिणाम-त: वाली ने सुग्रीव के साथियों को मार डाला अथवा बंदी बना लिया ; सुग्रीव अपने प्राण बचाने के लिए अपनी पत्नी तक को छोड़ कर भाग गया और वाली ने उसकी पत्नी रुमा का अपहरण कर उसे अपने घर में डाल लिया। इस सारी घटना में वाली के अत्याचारों का चित्रण करने में किसी भी देश-काल में लेखक अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र है।

सामाजिक क्षेत्र में, बावजूद अपनी आधुनिकता, प्रगतिशीलता तथा बौद्धिकता के, हमारा सामान्य जन पत्नी द्वारा पति, पुत्र द्वारा पिता, शिष्य द्वारा गुरु तथा अन्य सम्मानित जन का विरोध बहुत प्रसन्नता से स्वीकार नहीं करता, चाहे वे पति, पिता तथा गुरु अनाचारी, दुराचारी, व्यभिचारी तथा अत्याचारी ही क्यों न हो। किंतु परंपरागत रामकथा में लक्ष्मण, दशरथ तथा परशुराम के दोषों, सीमाओं तथा दुर्बलताओं का उग्र विरोध करते हैं। कुछ ऐसे ही और चरित्र भी हैं, जिनका सामाजिक न्याय के लिए संबंधों की इन रूढ़ियों के विरुद्ध प्रयोग किया जा सकता है। मैंने अंगद, तारा तथा मंदोदरी का इसी प्रकार उपयोग किया है। अंगद तथा तारा दोनों ही वाली का वध करने वाले राम तथा वध करवाने वाले सुग्रीव के अनुकूल हैं। स्पष्टत: वे लोग वाली की कामुकता, क्रूरता तथा मूढ़ता से प्रसन्न नहीं थे। वे वाली के दोषों का विरोध खुलकर कर सकते हैं और पाठक का मन उनके विरुद्ध नहीं उठेगा। पीढ़ियों के संघर्ष के साथ साथ नारी की स्वतंत्रता के प्रश्न को इन प्रसंगों के माध्यम से पाठक के मन में दूर तक धंसाया जा सकता है।

संसार में हो रहे, वैज्ञानिक राजनीतिक तथा सामाजिक परिवर्तनों से अधिकतम लाभान्वित होने के लिए भी आवश्यक है कि हमारे समाज में वैचारिक स्तर पर भी क्रांति हो। उसके लिए आवश्यक है कि उन स्रोतों का भी आधुनिकी-करण किया जाए, जहां से हमारा समाज अपने चिंतन, व्यवहार, आदर्श तथा जीवन पद्धति के लिए समर्थन प्राप्त करता है। मेरा संकेत उन पुराकथाओं की ओर है, जिन्हें हमारा समाज धार्मिक प्रमाणपत्र मान कर चलता है। वैज्ञानिक स्तर पर समाज अंतरिक्ष युग में प्रवेश कर जाए और दूसरी ओर वह पूरी निष्ठा से विश्वास करता रहे कि जब विंध्याचल ऊंचा उठ रहा था तो अगस्त्य के कहने पर उसने अपना बढ़ना रोक दिया था और वह आज भी अगस्त्य की वापसी की प्रतीक्षा में अपना ऊंचा उठना स्थगित किए हुए है। वह अब भी यही मानता चला जाए कि गौतम के शाप से अहल्या पत्थर हो गई थी और राम के चरणों की धूल के स्पर्श से पुन: नारी बन गई। जनसंख्या की अबाध-असंतुलित वृद्धि को रोकने के लिए प्रत्येक सोचने समझने वाला व्यक्ति व्याकुल हो रहा हो और दूसरी ओर समाज के सम्मुख राम, भरत,

लक्ष्मण और शत्रुघ्न के बाल विवाह का आदर्श हो, तो समाज के चिंतन और व्यवहार में संगति कैसे बैठेगी ? निश्चित् रूप से तर्कसंगत रूप से उन्हें समझना होगा कि विंध्याचल के ऊपर उठने का अर्थ पर्वत का ऊंचा उठना नहीं, विंध्याचल के उत्तर और दक्षिण में बसे हुए लोगों के बीच के बढ़ते विरोध को ही विंध्याचल का ऊंचा उठना माना जाना चाहिए। और उसे रोकने का श्रेय अगस्त्य को ही है। अहल्या वस्तुत: गौतम के शाप से शिला नहीं बनी थी। पति और समाज द्वारा परित्यक्ता वह नारी जीवन के कष्टों से अकेली जूझती जूझती शिलावत् हो गई थी ; और राम अपने स्नेह और सम्मान से उन्हें वापस सामान्य जीवन की ओर लौटा लाए थे। इस समाज को यह भी बताना होगा कि मर्यादापुरुषोत्तम राम, पच्चीस वर्षों की अवस्था से पूर्व गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के आर्य ऋषियों के निषेध का उल्लंघन नहीं कर सकते थे।

उपन्यास लिखना आरंभ किया तो पाया कि पहली आपत्ति मेरे अपने पिता को ही थी। उनका मानना था कि राम परम ब्रह्म हैं और मैं साधारण चरित्र का एक सांसारिक कथाकार, जो घटना में रस लेता है। ऐसा न हो कि मैं अपने हल्के चरित्र के कारण श्रीराम के चरित्र को दूषित कर दूं। यह आपत्ति सनातनी परंपरा में पले एक हिंदू की आपत्ति थी। समीक्षकों की आपत्ति थी कि राम का चरित्र स्वाभाविक नहीं है, क्योंकि मैं उनकी किसी चारित्रिक दुर्बलता का चित्रण नहीं कर रहा था। उनकी मान्यता थी कि बिना चरित्र की दुर्बलता के, कोई चरित्र स्वाभाविक - यथार्थ - हो कैसे सकता है। उन्होंने अपने जीवन में कभी वैसा चरित्र नहीं देखा था। उनका अपना चरित्र भी वैसा नहीं था। वैसे चरित्र की कोई कल्पना भी उनके मन में नहीं थी।...

आपत्ति मुझे भी बहुत सार्थक लगी। यथार्थवादी लेखक होने का गौरव मैं कैसे त्याग देता।...स्वाभाविकता पर मेरा भी बहुत बल था। मैं भी नहीं चाहता था कि मेरे नायक का चरित्र अस्वाभाविक बने। ऐसी कामना कौन लेखक करेगा।... किंतु मैं कर ही क्या सकता था। श्रीराम के चरित्र में मुझे कहीं कोई छिद्र दिखाई नहीं दे रहा था। जब दोष था ही नहीं तो साहित्यिक पंडितों को प्रसन्न करने के लिए, मैं उस परम पावन चरित्र पर कालिमा तो नहीं पोत सकता था।

मैंने स्वीकार किया कि चरित्र स्वाभाविक होना चाहिए। मैंने स्वीकार किया कि चरित्र यथार्थ होना चाहिए। ... किंतु उसका यथार्थवादी होना आवश्यक नहीं था। यथार्थ चित्रण से तात्पर्य है - मानवीय चरित्र का वस्तुपरक चित्रण करना। मनुष्य त्रागुणात्मक माया के तत्वों से बना है। उसमें तमोगुण और रजोगुण के साथ सतोगुण भी है। संसार में पापियों के समान धर्मात्माओं, महात्माओं, आदर्शवादियों और नि:स्वार्थ परमार्थियों का होना भी उतना ही सत्य है। अत: ऐसे आदर्श चरित्र, अविश्वसनीय और अस्वाभाविक नहीं हैं। उनका चित्रण अयथार्थ नहीं है। किंतु यथार्थवाद और यथार्थ चित्रण में पर्याप्त भेद है। यथार्थवाद एक नास्तिक दर्शन का नाम है, जो ईश्वर को नहीं जानता। मनुष्य को लोभ और भय का पुतला - स्वार्थी और पाशविक वृत्तियों से युक्त अस्तित्व मानता है। वह यह स्वीकार कर ही नहीं सकता कि राम और कृष्ण जैसे निर्दोष, केवल सतोगुणी चरित्र भी इस धरती पर जन्म ले सकते हैं। मुझे अपने चरित्रों को स्वाभाविक रखना था, यथार्थ रखना था, किंतु उन्हें 'यथार्थवादी' चरित्र नहीं बनाना था।

'पुराख्यानक' शब्द का प्रयोग, 'पौराणिक' के पयार्यवाची के रूप में किया जाता है। 'पौराणिक' शब्द अनेक बार अंग्रेज़ी के शब्द 'माइथॉलॉजिकल' के हिंदी अनुवाद के रूप में भी स्वीकार किया जाता है। 'माइथॉलॉजिकल' शब्द 'मिथ' से बना है। 'मिथ' के अनेक प्रचलित अर्थों में से सबसे लोकप्रिय अर्थ है - 'मिथ्या', 'जिसका कोई अस्तित्व न हो'। यदि हम पौराणिक कृतियों को माइथॉलॉजिकल के अर्थ में स्वीकार कर के चलेंगे, तो हम आरंभ में ही यह स्वीकार कर लेंगे कि वे कृतियां मिथ्या और सर्वथा काल्पनिक हैं।

किंतु हमारी मान्यता है कि हमारे पुराण हमारा इतिहास हैं। यह सत्य है कि वे हमारा काव्य भी हैं। काव्य में कल्पना का समावेश भी होता है। हमारा पौराणिक काव्य इतिहासाश्रित है, जिस में काव्यात्मक कल्पना का मिश्रण भी हुआ है।

प्राय: हमारे तथाकथित दिग्गज विद्वान् पौराणिक का अर्थ 'इतिहासपूर्व' ही करते हैं ; और वे मानते हैं कि इतिहास वहीं से आरंभ होता है, जहां से उसे पाश्चात्य विद्वान आरंभ करते हैं।' अर्थात् पश्चिम का अज्ञान हमारे विद्वानों के लिए प्रकाश स्तंभ बन जाता है। हमारे देश के विद्वान् भी पश्चिमी संसार द्वारा मान्य क्रमबद्ध इतिहास से पहले की घटनाओं को पौराणिक , अत: अनैतिहासिक मानते हैं। इस प्रकार एक काल विशेष से पहले की घटनाएं उनके लिए पौराणिक हो जाती हैं ; और उन घटनाओं पर आधृत साहित्य भी पौराणिक साहित्य हो जाता है ; किंतु पुराणों अथवा पौराणिक लेखन का संबंध केवल कालगणना से ही नहीं है।

एक मान्यता यह भी है कि वेदों - विशेषकर उपनिषदों - के सिद्धांतों को जन सामान्य तक पहुंचाने के प्रयत्न में ही पुराणों की रचना की गई है। इस दृष्टि से उपनिषदों के सूक्ष्म ज्ञान को पुराणों में स्थूल रूप दिया गया है। इस मान्यता से कुछ अंशों में यह भी ध्वनित होता है कि वैदिक सिद्धांतों को प्रचारित करने के लिए कवियों ने पुराणों के रूप में काल्पनिक रचनाएं प्रस्तुत की होंगी। वस्तुत: मानना यह चाहिए कि पुराणों ने अपनी रचना के लिए उन पात्रों को ही स्वीकार किया, जिनके चरित्र वैदिक चिंतन के अनुकूल थे। जो अपने व्यवहार में वैदिक सिद्धांतों को चरितार्थ कर रहे थे। केवल उन ही घटनाओं को पुराणों के उपजीव्य के रूप में ग्रहण किया गया, जो वैदिक सिद्धांतों को सजीव करती थीं, उनका प्रतिनिधित्व करती थीं। अत: पुराख्यानकों में वेदों के ही सिद्धांत चरितार्थ और मूर्तिमंत होते हैं।

वेदों की मान्यता है कि देश और काल, सामान्य मनुष्य की बुद्धि अथवा ज्ञान तक ही परिसीमित नहीं हैं। काल अनन्त है, देश अनन्त है। मनुष्य अपनी ज्ञानेन्द्रियों और बुद्धि के माध्यम से सृष्टि की विराट परिधि को नहीं जान सकता। मनुष्य रूपी यंत्र में प्रकृति ने इतनी क्षमता ही नहीं भरी कि वह प्रकृति की सृष्टि को उसकी समग्रता में जान और समझ सके। जैसे संगणक (कंप्यूटर) उस ज्ञान को ग्रहण नहीं कर सकता, जो उसे पहले से ही दिया न गया हो। वैसे ही मनुष्य की बुद्धि इंद्रियातीत ज्ञान तक नहीं पहुंच सकती। मनुष्य अपने जन्म से पहले और मृत्यु के बाद की घट नाओं के विषय में कुछ नहीं जानता। वह इस पृथ्वी के अतिरिक्त

अन्य किसी भी आकाश गंगा, ग्रह अथवा अंतरिक्ष के जीवन से परिचित नहीं है। वह अपने ही वास्तविक स्वरूप को ही नहीं जानता। वह मन, बुद्धि, अहंकार और इंद्रियों का बंदी है। उनकी माया के बाहर वह कुछ भी नहीं जान पाता। वह कहां से आया है, और उसे कहां जाना है - उसे यह भी ज्ञात नहीं है। पुराणों का चिंतन और वर्णन क्षेत्र इतना संकीर्ण नहीं है। पुराण प्रकृति, सृष्टि तथा मनुष्य के जीवन को उसकी समग्रता में देखते और पहचानते हैं। अत: पुराणों की घटनाएं, किसी एक देश अथवा जन्म तक सीमित नहीं हैं। पुराकथाएं, समग्र सृष्टि को ले कर चलती हैं। पृथ्वी पर इस जन्म में घटित अनेक घटनाओं का कारण किसी अन्य जन्म में, किसी अन्य लोक में घटित घटनाओं में विद्यमान हो सकता है।

वह मानता है कि कोई भी पदार्थ शून्य से उत्पन्न नहीं हुआ है। स्वामी विवेकानन्द का कहना है कि सृष्टि के निमार्ण के लिए अंग्रेज़ी का शब्द क्रियेशन उपयुक्त नहीं है। उसके स्थान पर प्रोजेक्शन शब्द का प्रयोग होना चाहिए। चैतन्य से ही जड़ की उत्पत्ति होती है और वह पुन: उसी में लौट जाता है। इसीलिए हम कर्मसिद्धांत और जन्मांतरवाद को भी स्वीकार करते हैं।

वस्तुत: हमारे अनेक उपन्यासकार या तो उस चिंतन से परिचित नहीं हैं, या वे पुराणों में उन सिद्धांतों को पहचान नहीं पाते ; या फिर वे उससे सहमत नहीं हैं। किंतु वे घटनाएं, वे आख्यान और वे चरित्र इतने आकर्षक हैं, अत: इतने लोकप्रिय हैं कि लेखक उनका मोह नहीं छोड़ सकता। इसी मोह में उस चिंतन को जाने बिना, अथवा जान कर सायास उसकी उपेक्षा कर, अनेक उपन्यासकारों ने उपन्यास लिखे हैं। चूंकि उस जीवन पद्धति और उस चिंतन से हम परिचित नहीं हैं, इसीलिए अनेक बार उस में उल्लिखित घटनाओं को हम चमत्कार मान लेते हैं। वे चमत्कार हमें पसंद नहीं आते। वे हमारे सीमित अनुभव से मेल नहीं खाते। अत: हम उनके सत्य में विश्वास नहीं करते। हमारे पाठक उन्हें किसी युग की जादूगरी और चमत्कार मान कर उसको ग्रहण नहीं कर पाते। उनका उन घटनाओं से तादात्म्य नहीं होता। ऐसे में उन आख्यानों और चरित्रों के सौन्दर्य पर मुग्ध लेखक, प्रयत्न यह करते हैं कि किसी प्रकार उनके वे तथाकथित चमत्कारी अंश या तो निकाल दिए जाएं, या फिर उनका कोई सरल बौद्धिक समकालीन समाधान ढूंढ लिया जाए, ताकि आज के पाठक उन घटनाओं से कुछ तादात्म्य कर सकें।

ऐसे में जो उपन्यास लिखे गए हैं, उन पर अपने समय, अपनी बुद्धि और अपने सिद्धांतों को आरोपित किया गया है। ऐसी कृतियां हैं तो पौराणिक आख्यानों का नवीन रूप, किंतु वे लेखक के समकालीन विचारों और जीवन पद्धति का वहन करती हैं। किसी भी लेखक पर अपने युग का गहरा प्रभाव होता है। वह उससे कभी मुक्त नहीं हो पाता। यह तो सत्य है कि विभिन्न काल एक दूसरे से पर्याप्त भिन्न दिखाई देते हैं ; किंतु यह भी उतना ही सत्य है कि काल परिवर्तन से न तो प्रकृति के नियम बदलते हैं, न मनुष्य का स्वभाव ही परिवर्तित हो जाता है। ऊपरी तौर पर लगता है कि अन्य युगों की समस्याओं और आज की समस्याओं में जैसे बहुत भेद है ; किंतु गंभीरता से देखें तो समस्याएं वे ही हैं, केवल उनका आवरण बदल गया है। यही कारण है कि पुराण आज भी हमें आकर्षित करते हैं। उनमें हमें अपनी शाश्वत समस्याओं का समाधान मिलता है। संस्कारों के रूप में उनका प्रभाव हमारे रक्त में बह रहा है। वे चरित्र और उनके आदर्श हमारे भीतर इतनी गहराई तक उतरे हुए हैं कि हम उनसे विमुख नहीं हो सकते। किंतु जब उन चरित्रों का वास्तविक अर्थ हमारे लेखक की समझ में नहीं आता, तो वह अपनी समस्याओं और अपने चिंतन को उन पर आरोपित कर देता है। अनेक नई विचार धाराओं को लेकर, नए चिंतन को उन्हीं चरित्रों के माध्यम से प्रस्तुत करता है। साहित्यकारों का यह प्रयत्न देश और समाज की अमूल्य निधि है, जिसके सहारे समाज सहस्त्रों वर्षों तक च-लता है।

मेरे मन ने भी स्वीकार किया कि पुरानी कथा को लिखते हुए सतर्कता में तनिक भी चूक हुई तो गलत मूल्यों का समर्थन हो सकता है। ऐतिहासिक कृतियों के लेखन में कदाचित् यह कठिनाई अधिक है। उसमें कथानक संबंधी प्रमाण पर अधिक बल होने के कारण घटनाओं के परिवर्तन के लिए तो अवकाश होता ही नहीं- चरित्रों को भी कदाचित् अधिक तोड़ा मरोड़ा नहीं जा सकता ; किंतु पौराणिक आख्यान अनेक कारणों से कच्चे माल- ईंट गारे के समान हैं, जिनका प्रयोग, लेखक अपनी इच्छानुसार कर सकता है। रामकथा के विभिन्न रूपों के तुलनात्मक विश्लेषण से यह पूर्णत: स्पष्ट है कि उसमें लेखक की अपनी नैतिकता, अपनी विचारधारा स्थापित कर पाने की संभावना किस मात्रा तक विद्यमान है।

'पुराण' वस्तुत: अध्यात्म और आध्यात्मिक नियमों का प्रतिपादन करते हैं और 'उपन्यास' मात्र इहलौकिकता का। 'पुराण' में संसार और सांसारिक सुखों का कोई महत्व नहीं है और ' उपन्यास' इस संसार से परे कुछ नहीं जानता। 'पौराणिक उपन्यास' उन दोनों के मध्य की कड़ी हैं। वह चित्रण तो संसार के धरातल पर कर रहा है, किंतु उसमें से आभा अध्यात्म की भी उद्भासित हो रही होती है।

अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए मैं कुछ प्रतिष्ठित लेखकों द्वारा लिखी गई प्रसिद्ध पौराणिक कृतियों की चर्चा करना चाहूंगा। माइकल मधुसूदन दत्त के प्रसिद्ध महाकाव्य 'मेघनाद वध' को एक प्रसिद्ध और महान् पौराणिक काव्य माना जाता है। मेरा प्रश्न यह है कि उस कृति में काव्य तत्व कितना भी हो, किंतु माइकिल मधुसूदन दत्त को मेघनाद के चरित्र के किस गुण ने इतना प्रभावित किया था कि वे उस पर महाकाव्य लिखने बैठ गए ? वह राम के सब से बड़े शत्रु का पुत्र, युवराज , सेनापति और सबसे बड़ा समर्थक था। एक वही था, जिसने रावण के दरबार में सीताहरण का समर्थन किया था ; और सीता को श्रीराम को लौटा दिए जाने का विरोध किया था। माइकल मधुसूदन दत्त ने हिंदू धर्म त्याग कर ईसाई मत को स्वीकार किया था, तो हिंदुओं के आदर्शों और मूल्य व्यवस्था को विकृत करने के लिए कुछ तो उसे करना ही था। उसने हिंदुओं के सर्वोत्कृष्ट आदर्श चरित्रों में से एक श्रीराम के परम शत्रु के पुत्र को अपना नायक बना कर उसका गुणगान किया।

चतुरसेन शास्त्री ने पौराणिक उपन्यास के नाम पर 'वयंरक्षाम:' लिखा और राम के परम शत्रु और राक्षसचिंतन के आधारस्तंभ - रावण - को अपना नायक बनाया। प्रथम अध्याय में ही 'वयंरक्षाम:' का नायक रावण अपनी साली से बलात्कार

करता है ; और अपनी प्रेमिका के शव को काट कर , उसे भून और तल कर खा जाता है। क्या संसार के किसी भी सभ्य समाज में ऐसे चरित्र को अपना आदर्श नहीं माना जा सकता ?

'मृत्युंजय' में शिवाजी सावंत ने महाभारत के दुष्ट पात्र कर्ण को अपने नायक के रूप में प्रतिष्ठित किया है। किंतु संसार का कोई सभ्य समाज राजसभा में द्रौपदी जैसी सम्राज्ञी को ही नहीं, एक साधारण वेश्या को भी, किसी भी वर्ग, जाति और चरित्र की स्त्री को, निर्वस्त्र कर देने का परामर्श देने वाले व्यक्ति को अपना आदर्श नहीं मान सकता।

कन्नड़ के उपन्यासकार भैरप्पा ने अपने उपन्यास 'पर्व' में यथार्थवाद के नाम पर यह नहीं दिखाया कि अर्जुन ने गांडीव लाने के लिए कक्ष में प्रवेश किया और वहां युधिष्ठिर और द्रौपदी को एक साथ देख लेने को अपना अपराध मान कर बारह वर्षों का वनवास स्वीकार किया। उनकी कल्पना में ऐसा आदर्श और महान् चरित्र संभव ही नहीं है। अत: उन्होंने द्रौपदी को खोकर, अर्जुन को असाधारण रूप से कामपीड़ित दिखाया। जब उसकी पीड़ा असह्य हो उठी अथवा कामावेग असाधारण रूप से प्रबल हो उठा तो अर्जुन ने द्रौपदी से बलात्कार किया और फिर अपने भाइयों के भय से वन में भाग गया और बारह वर्षों के पश्चात् लौटा।

उड़िया लेखिका प्रतिभा राय ने अपने किन्हीं कारणों से द्रौपदी को किसी रीतिकालीन नायिका के समान अपने पांच पतियों के साथ शृंगार का भोग करते दिखाया है। द्रौपदी हवनकुंड से उत्पन्न हुई तेजस्विनी नारी न होकर काम के वेग से आंदोलित प्रबल कामिनी है। न वह ऐसी सती है, जो नारी जाति की अनुकरणीया हो सकती है। वह तो पांच पतियों से कामसुख पाने वाली रूपगर्विता नायिका है।

मेरी मान्यता है कि ये उपन्यास पौराणिक कथाओं और पौराणिक चरित्रों को लेकर अवश्य लिखे गए हैं ; किंतु वे पौराणिक उपन्यास नहीं हैं। न तो उनमें पौराणिक चिंतन है, न वे पुराणों की मूल्य-व्यवस्था की रक्षा करते हैं। हां ! उन्हीं चरित्रों को लेकर वे पौराणिक आदर्शों और उस मूल्यव्यवस्था को ध्वस्त करने का प्रयत्न अवश्य कर रहे हैं।

कई वामपक्षी आलोचकों ने यह भी कहा कि मैं रामकथा लिख कर आर्य और द्रविड़ द्वेष को भड़का रहा हूं। मुंबई में 23 मार्च 1982 को 'समता अध्ययन न्यास' के एक सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए, स्वर्गीय नाना जी गोरे ने कहा था कि राम रावण का युद्ध कुछ नहीं, उत्तर और दक्षिण भारत का युद्ध था। उन्होंने तो यहां तक कहा था कि राम को कोई अधिकार नहीं था कि वे रावण के राज्य में घुस आते। आखिर राम, रावण के राज्य में क्या कर रहे थे ?

उन्होंने यह स्पष्ट नहीं किया कि रावण के राज्य की सीमा कहां से आरंभ होती थी, जहां राम को प्रवेश नहीं करना चाहिए था। उन्होंने यह भी नहीं बताया कि ताड़का, सिद्धाश्रम के निकट ताड़कावन में किस अधिकार से रह रही थी। उन्होंने यह भी स्पष्ट नहीं किया था कि किस विधान के अनुसार, किसी राज्य की सीमा का अतिक्रमण करने के लिए, किसी व्यक्ति को उसकी पत्नी के अपहरण से दंडित किया जाता है।

उक्त समारोह में मैं उपस्थित था और चाहता था कि नाना जी गोरे के सम्मुख अपनी ये जिज्ञासाएं रखूं, किंतु वह उनका अध्यक्षीय भाषण था और उसके पश्चात् सभा समाप्त हो गई थी। वे अपने घर चले गए थे और मुझे रात की गाड़ी पकड़ कर हैदराबाद जाने के लिए स्टेशन की ओर जाना पड़ा था। किंतु इस बीच भी मैंने आयोजकों के सम्मुख यह इच्छा प्रकट की थी कि वे एक ऐसी गोष्ठी का आयोजन करें, जिसमें आमने सामने बैठ कर संवाद किया जा सके। वह संभव नहीं हो सका। और अब तो नाना जी भी दिवंगत हो चुके हैं।

इस प्रकार के वक्तव्य देना, विदेशी षड्यंत्रों के हाथों में खेलना, चतुर और स्वार्थी विदेशियों द्वारा अपने हित में रचे और प्रचारित किए गए सिद्धांतों का प्रचार करना है। अथवा एक तर्कहीन उच्छृंखल क्रांतिकारिता का प्रदर्शन कर, स्वयं को महान् सिद्ध कर, अपने अहंकार की तुष्टि करना है। मैं मानता हूं कि जातीय द्वेष फैलाना भयंकर पाप है ; किंतु रामकथा को लेकर आर्य-द्रविड़ विरोध की बात मेरी समझ में कभी नहीं आई। परंपरागत रामकथा में भी रावण ब्रह्म का प्रपौत्र है। यक्ष कुबेर का भाई है, विश्रवा का पुत्र है ; और वह लंका का निवासी भी नहीं है। लंका पर तो उसने आधिपत्य जमाया है। फिर उसे द्रविड़ कैसे माना जाए ? अनेक राक्षसों के वक्तव्य के अनुसार भी पहले उनमें से कोई यक्ष था कोई गंधर्व, कोई कुछ और। राक्षस एक जाति नहीं, भोगवादी भौतिक विचारधारा के आस पास जुट आया आततायी लोगों का एक दल ही दिखाई पड़ता है। रामकथा में यदि किसी को द्रविड़ मानने की बाध्यता हो ही तो वे वानर, ऋक्ष जातियां ही हो सकती हैं, जो राम के नेतृत्व में रावण के विरुद्ध लड़ीं। राम और रावण का युद्ध आर्य और द्रविड़ लोगों का युद्ध कैसे हो सकता है ? रावण और उसके मित्र अपने आप को राक्षस कहते हैं और एक अत्यंत नृशंस भोगवादी दर्शन का प्रतिपादन करते हैं। जिसमें मानवाधिकारों के लिए कोई स्थान नहीं है। इस रूप में रावण की सत्ता, लंकावासियों की सत्ता नहीं है। वह तो एक प्रकार का राजनीतिक माफिया है, जिसने सत्ता पर अधिकार कर रखा है और साधारण जन का बोलने का कोई अधिकार नहीं है। अब यदि राम की सेना को देखें तो उसमें राम और लक्ष्मण को छोड़ कर एक भी व्यक्ति उत्तर भारत का नहीं है। वे सारे वानर किष्किंधा से लेकर लंका तक के प्रदेशों के निवासी हैं। इस प्रकार न तो राम की सेना क्षेत्रीय दृष्टि से राम के प्रदेश की है , न रावण की सेना रावण के प्रदेश की है। ऐसे में यह उत्तर और दक्षिण भारत अथवा आर्य और द्रविड़ युद्ध कैसे हो सकता है।

नरेश महता ने ' संशय की एक रात' में हनुमान से कहलवाया है :

" हमने राक्षस रथ खेंचे
दास भाव से।
बदले में
नर नहीं,
वानर पद प्राप्त किए।
लंका में हम
भोज्य पदार्थों से बिकते हैं।
गरम सलाखों से
प्रत्येक पृथुज्जन देह लिखी है।

ये गुलाम हैं।
इन का केवल यही नाम है।"

और फिर उपन्यास के कथानक के तर्कसंगत होने की बात तो थी ही। उसी लक्ष्य से तो यह विधा चुनी थी कि इस कथा की असंगतियों को यथाशक्ति दूर कर उसे कुछ वैज्ञानिक रूप दिया जा सके। किंतु एक कठिनाई, जिसकी ओर मित्रों ने ध्यान नहीं दिलाया था, स्वयं उभर कर मेरे सामने आ खड़ी हुई- वह, रचना प्रक्रिया की दृष्टि से प्रख्यात कथा में भी मौलिक हो पाने की समस्या थी। प्रख्यात कथा में मौलिक होने का अर्थ हुआ कि आप नया कुछ भी न कहें और फिर जो कुछ भी कहें, वह नया हो।

लिखने की प्रक्रिया में ही मैंने अनुभव किया कि प्रख्यात् कथा में भी मौलिकता के अनेक आयाम हैं। घटनाओं को बदलना संभव नहीं है। यह नहीं कहा जा सकता कि राम वन नहीं गए थे, अथवा अहल्या के साथ इंद्र ने बलात्कार का प्रयत्न नहीं किया था, अथवा कैकेयी अवस्था में दशरथ के ही समान थी। किंतु, यह मोटी रेखाएं हैं- यह बाहरी ढांचा है। इसमें महीन रेखाएं भरना लेखक का काम है।

मौलिकता के संबंध में घटनाओं वाले सिद्धांत चरित्रों पर भी लागू होते हैं। प्रसिद्ध चरित्रों के मूलभूत गुणों को नहीं बदला जा सकता। राम को कायर और लक्ष्मण को शांत नहीं दिखाया जा सकता। किन्तु प्रसिद्ध चरित्रों के इन्हीं गुणों का प्रयोग अपने ढंग से किया जा सकता है। अपने उपन्यास में अनेक स्थानों पर वृद्धों की जड़ता का उपहास करने का काम मैंने लक्ष्मण से लिया है। युद्ध में उग्रता के साथ लक्ष्मण ही आगे रखे जा सकते हैं। दूसरी ओर जिन चरित्रों की रेखाएं बहुत गाढ़ी नहीं हैं- उनके निर्माण में सर्जक मन बहुत स्वतंत्रता लेता है। उदाहरण के लिए निषादराज गुह, सुग्रीव की पत्नी रुमा, वाली की पत्नी तारा, रावण की पत्नी मंदोदरी, अंगद, स्वयं सुग्रीव, नल, नील, विभीषण तथा ऐसे ही अनेक अन्य पात्र हैं, जिन्हें लेखक पूरी तरह से अपने तौर पर गढ़ सकता है।

किन्तु इन सब से महत्वपूर्ण है कि लेखक का अपना दृष्टिकोण- जिससे वह स्वयं को मौलिक प्रमाणित करता है। अपने दृष्टिकोण के आधार पर ही वह निष्कर्ष निकालता है। जयपुर में 'दीक्षा' पर हुई एक गोष्ठी मेंमुझसे पूछा गया कि उस उपन्यास में स्थापित अपनी मान्यताओं के लिए मेरे पास कोई परंपरागत प्रमाण है ? वस्तुत: यह मौलिक बन पाने के अधिकार का ही प्रश्न है। मेरा उत्तर था कि यदि मुझ से पूर्व किसी ने वैसी कल्पना कर ली तो वह प्रमाण हो गया, और कल्पना मैंने की तो वह अप्रामाणिक रह जाएगी ? फिर भी मैं अनुभव करता हूं कि कोई आधार कहीं मिल जाए तो अच्छा ही है।

रामकथा में इंद्र की चर्चा पहले अहल्या प्रसंग में है, फिर उसका पुत्र कामुक जयंत आता है, तीसरी बार इंद्र शरभंग के आश्रम में दिखाई पड़ता है, जहां राम के आने से पहले ही वह भाग जाता है। पहली तथा दूसरी घटना में पिता पुत्र के चरित्रों के मिलन से इंद्र का कामुक तथा विलासी रूप स्पष्ट हो जाता है; किंतु शरभंग के आश्रम में इंद्र के वर्तमान होते हुए भी ऋषि मुनियों को खाकर राक्षस उनकी हड्डियों का ढेर लगा दें और मुनि अपनी रक्षा की प्रार्थना राम से करें- इन तथ्यों को देख कर मेरा मन खटक गया। क्या इसका अर्थ यह हुआ कि इंद्र मुनियों से पूजा तो चाहता था किंतु उनकी रक्षा नहीं करता था, या कर नहीं पाता था ? क्या इसका अर्थ है कि इंद्र भी तपस्वियों तथा सामान्य वनवासियों के उत्पीड़न में किसी न किसी रूप में सहायक था ? सर्जक मन इस निष्कर्ष पर पहुंच गया था कि इंद्र भी उत्पीड़क था, किंतु आलोचक मन इतनी जल्दी ऐसी परंपरा विरोधी स्थापना कैसे मान ले ? उसे तो कोई न कोई प्रमाण चाहिए था। सर्जक मन अपनी बात पर तो टिका रहा, किंतु तर्क खोजता रहा। उसी खोज में तमिल के महाकवि कंबन की रामायण में मुझे एक वाक्य मिला। शरभंग के आश्रम के आगे राक्षसों द्वारा खाए जा चुके मुनियों की हड्डियों का ढेर दिखाते हुए मुनि समूह राम से कहता है, " अब इंद्र भी राक्षसों को प्रसन्न करने के लिए उनकी इच्छा के अनुसार चलता है।" यह संकेत ही सर्जक मन के लिए पर्याप्त था।

अनेक अन्य स्थानों पर संकेत से नहीं, तर्काश्रित अनुमान से काम लेना पड़ता है। जिस संशय, आशंका तथा राजनीतिक प्रतिहिंसा के वातावरण में राम को वन जाना पड़ा था, उसमें वे यह देखे बिना वन जा ही नहीं सकते थे कि अयोध्या लौट कर भरत का रुख क्या होगा? अत: चित्रकूट में रुक कर भरत की नीति तथा व्यवहार का प्रमाण पाये बिना वे आगे नहीं बढ़े। मुझे लगता है कि इसी संभावित अत्याचार की दिशा भांपने के लिए राम चित्रकूट में नौ महीने रुके रहे थे। कैकेयी द्वारा मांगे गए वर के अनुसार उनका गंतव्य दंडक वन था। इसलिए दंडक से पूर्व कहीं भी लंबे समय तक रुकने का कोई अर्थ नहीं था। और यहां हम देखते हैं कि राम दंडक वन की ओर जाते जाते चित्रकूट में रुक जाते हैं ; और तब तक रुके रहते हैं, जब तक भरत अपने ननिहाल से लौट कर अयोध्या से होते हुए, चित्रकूट पहुंच कर अपना मन पूरी तरह से खोल कर उन के सामने नहीं रख देते। चित्रकूट, अयोध्या से इतनी दूरी पर है कि वहां तक अयोध्या के समाचार और अयोध्या के लोग सुविधा से पहुंच सकते हैं। यहां तक तो राम की तीनों माताएं भी आईं थीं। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि अयोध्या में कुछ ऐसा घटा है जो राम के लिए चिंताजनक है, तो वह राम के लिए गोपनीय नहीं रह पाएगा। मैं यह नहीं कहता कि अयोध्या में यदि कोई अनीति होती या कुछ अघटनीय घटता, तो राम लौट आते, किंतु इतना तो स्पष्ट ही है कि चित्रकूट में रहते हुए, वे लक्ष्मण को अयोध्या भेज सकते थे। अपने मित्रों और साथियों की सहायता से अयोध्या की स्थितियों का नियंत्रण कर सकते थे।

मैं यह मानता हूं कि राम इसी प्रतीक्षा में चित्रकूट में रुके थे कि भरत अयोध्या में आ लें और उसकी नीति स्पष्ट हो ले, तो वे अपनी भावी योजनाओं पर विचार करें। मार्ग में जब वे रो कर लक्ष्मण से यह कहते हैं कि वह अयोध्या लौट जाए, तो उसके पीछे भी यही भाव है कि उनके और अपने मित्रों की सहायता से लक्ष्मण अयोध्या की परिस्थितियों पर नियंत्रण रख पाएंगे।

यह अनुमान इस तथ्य से भी प्रमाणित होता है कि भरत से मिल लेने के पश्चात्, उसके मन-मस्तिष्क और नीति को जान लेने के पश्चात् राम चित्रकूट में एक दिन भी रुकना नहीं चाहते। वे कहते हैं कि इतने लोगों के आकर ठहरने के पश्चात् चित्रकूट में वह स्वच्छता नहीं रही और इस स्थान से भरत की स्मृति कुछ

ऐसी जुड़ी हुई है कि यहां रहना उनके लिए कष्टप्रद हो जाएगा। भरत से किसी ऐसी आशंका का संकेत राम ने नहीं दिया है, किंतु लक्ष्मण के वचन और व्यवहार से अत्यंत स्पष्ट है कि उन्हें भरत से इस प्रकार की आशंकाएं ही नहीं थीं, वरन् भरत का शत्रुतापूर्ण व्यवहार लक्ष्मण के लिए अधिक स्वाभाविक होता। राम के मित्र निषादराज गुह का चिंतन भी लक्ष्मण के ही अनुकूल है। वह भी भरत को सेना के साथ आते देख कर अत्यंत सशंक है। वह अपनी सेना को युद्ध के लिए तैयार करता है ; अपनी प्रजा का राम की रक्षा के मार्ग में प्राण त्यागने के लिए आता है। वे लोग भरत से इतने आतंकित हैं कि उन लोगों का ध्यान इस ओर नहीं जाता कि भरत के साथ गुरु वसिष्ठ भी आ रहे हैं, मंत्री सुमंत भी आ रहे हैं और तो और कौसल्या और सुमित्रा भी उस सार्थ में सम्मिलित हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि वे लोग भरत को अधिक नहीं जानते। वे केवल कैकेयी के दुव्यर्वहार को जानते हैं। अत: कैकेयी के पुत्र से किसी अच्छी बात की अपेक्षा नहीं करते।

राम उस प्रकार आशंकित नहीं हैं, जिस प्रकार लक्ष्मण और गुह हैं ; किंतु सावधान वे भी हैं। वे परख लेना चाहते हैं कि भरत के मन में क्या है ? उसकी नीतियां क्या हैं ? उसका व्यवहार कैसा है ? इसलिए वे लक्ष्मण को समझाते भी हैं। चित्रकूट में अपने प्रवास के दौरान जब भरत और कैकेयी - दोनों का व्यवहार उनके वास्तविक पश्चात्ताप को प्रमाणित कर देता है और कहीं यह शंका नहीं रह जाती कि भरत के मन में किसी प्रकार का कोई कलुष है तो राम निश्चिंत भाव से आगे बढ़ जाते हैं।

जिन भयंकर परिस्थितियों में उन लोगों ने वन में चौदह वर्ष बिताए, उनमें साथ देने वाली सीता कोमलांगी, भीरु तथा नि:शस्त्र नहीं रही होगीं। जनक तथा राम ने सीता को शस्त्र-शिक्षा अवश्य दी होगी और आवश्यकता होने पर उन्होंने भी आत्मरक्षा के युद्धों में भाग लिया होगा। और समग्रत: रावण के वध के लिए किया गया यह युद्ध रावण की पूंजीवादी, साम्राज्यवादी आततायी शक्ति के विरुद्ध, वानर, ऋक्ष जैसी पिछड़ी हुई जातियों का युद्ध था, जिसमें राम तथा लक्ष्मण ने सैनिक नेतृत्व प्रदान किया था और जिसकी प्रेरणा वनवासी बुद्धिजीवियों ने दी थी। यह रामकथा पर अपने समय को आरोपित करना नहीं है, उसके भीतर की छिपी संभावनाओं को पहचान कर अपने युग की यथार्थ कथा कहने का विनम्र प्रयास है।

यहां इस वर्ग की कृतियों के विषय में एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न पूछा जा सकता है कि यदि लेखक को अपने ही युग की यथार्थ समस्याओं का चित्रण करना है तो फिर उसे प्रख्यात कथानक की क्या आवश्यकता है। वह उन समस्याओं का अपने ही यथार्थ परिवेश में जीवंत चित्रण क्यों नहीं करता ?

हमने अंग्रेजों को अपने देश से निष्कासित कर दिया था तो मान लिया था कि रावण मारा गया। हमने उसका सिर काट दिया था। किन्तु आज पचास वर्ष बाद हम देख रहे हैं कि वह दशग्रीव होकर ही नहीं, सहस्रबाहु होकर हमारे सामने खड़ा है। हमने एक रावण का राज्य छीना और मान लिया कि हमने रावण का वध कर दिया है, किन्तु अब देख रहे हैं कि रावण ही नहीं, ताड़का, सुबाहु, मारीच, खर, दूषण, त्राशिरा -- सब ही तो जीवित हैं। राजनीति में, विधायिका में, कार्यपालिका में, न्यायपालिका में--सब स्थानों पर वे बड़े सम्मान से प्रतिष्ठित हैं। जो विभीषण उनको समझाने का दुस्साहस करता है, वह लात खाता है और निकाल बाहर किया जाता है।तो विभीषण क्या करे? ...उसे राम की ही शरण में जाना होगा। रावण के वध में सहायता करनी होगी। बार बार करनी होगी। रावण को मारना होगा, फिर से मारना होगा। बार बार मारना होगा।

तो फिर पुराणों की आध्यात्मिक, सार्वकालिक, सार्वदेशिक, इंद्रियातीत ज्ञान से संबद्ध घटनाओं को उपन्यास में कैसे ढाला जाए ? व्यक्तिगत रूप में मुझे रामकथा के आध्यात्मिक स्वरूप को स्वीकार करने में तनिक भी बाधा नहीं है। मेरी कठिनाई केवल यह है कि मेरी आध्यात्मिक वृत्तियों का उतना विकास नहीं हो पाया है, इसलिए मैं यह तो समझ सकता हूं कि दूसरा व्यक्ति रामकथा के माध्यम से अध्यात्म का कौन सा तत्व विकसित कर रहा है ; किंतु स्वयं मेरे अपने मन में अध्यात्म का वह स्वरूप स्वत: विकसित नहीं होता।

मैं निश्चित् रूप से यह मानता हूं कि साहित्य की परिणति अंतत: अध्यात्म में ही होती है। कलाकार की सृजन-एकाग्रता, एक प्रकार की समाधि ही होती है और साहित्यकार की मधुमती भूमिका वस्तुत: साधक की समाधि होती है। सारी कलाओं की गति स्थूल से सूक्ष्म की ओर होती है। स्थूल शब्द के पीछे सूक्ष्म ध्वनि होती है। तो जितना मैं साहित्य को समझता हूं, उस में छुपे आंशिक अध्यात्म को भी उसी अनुपात में जानता हूं। महान संत कवियों की रचनाओं में निहित अध्यात्म का स्पर्श अनुभव करता हूं। किंतु मैं स्वयं उपन्यासकार हूं। उपन्यास में कथानक बहुत महत्वपूर्ण है। कहना चाहें तो कह सकते हैं कि कथानक ही उपन्यास का मूल स्वरूप है। उसे आत्मा कहने से मैं जानबूझ कर बच रहा हूं ; क्योंकि कथानक स्थूल है, अत: उपन्यास का शरीर है। बिना शरीर को ग्रहण किए हुए, आत्मा मनुष्य के रूप में कर्म नहीं कर सकती ; इसलिए उपन्यासकार को अपने मंतव्य को संप्रेषित करने के लिए कथानक रूपी शरीर को अंगीकार करना पड़ता है। शरीर जितना स्वस्थ और सुंदर होगा, मंतव्य उतनी सुविधा से सम्यक रूप से संप्रेषित होगा। कथानक रूपी इस शरीर का मस्तिष्क है तर्क। तर्क जितना निर्दोष, संपूर्ण और सर्वव्यापी होगा, कथानक उतना ही उत्कृष्ट होगा। इसलिए कार्य -कारण संबंध, प्रकृति के नियम, जीवन की स्वाभाविकता तथा पाठक के बोध-संसार में संप्रेषित होने की क्षमता, कथानक की उत्कृष्टता के अनिवार्य लक्षण हैं।

अब यदि उपन्यासकार रामकथा का मर्म ढूंढेगा तो वह अपना तर्क, कार्यकारण संबंध, स्वाभाविकता तथा पाठक के बोधसंसार तथा बोधक्षमता की उपेक्षा नहीं कर सकता। मैंने अपनी इन्हीं सीमाओं के भीतर रामकथा का जो मर्म पहचाना है, उसीको अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है। हमारी जीवन पद्धति हमें कहीं यह स्वतंत्रता देती है कि हम सृष्टा अथवा अपने देवी देवताओं को, अपने स्वरूप और स्वधर्म में से पहचानें, उसकी कल्पना उसीके अनुरूप करें। मैं कई बार अपने ईश्वर की कल्पना एक उपन्यासकार के रूप में करता हूं, जो यह संसार रूपी उपन्यास लिख रहा है। किस चरित्र को किन कारणों से, किस प्रयोजन के लिए किन्हीं विशिष्ट क्षमताओं के साथ जन्म देना है, यह वही जानता है। भविष्य में होने वाली घटनाओं को ध्यान में

रखकर वह उसके कारणों को पूर्वनियोजित करता है। घटनाओं को इच्छित दिशा देने के लिए, वह नए चरित्रों की सृष्टि करता है और किसी चरित्र का उद्देश्य पूरा हो जाने पर, उसे मार्ग में से हटा लेता है।

पौराणिक कथाओं को उपन्यास के रूप में पुनर्सृजन में यथार्थ चित्रण की दृष्टि से पहली बाधा शाप और वरदानों की है। मैंने पाया कि यदि हम थोड़ा सा युक्ति का प्रयोग करें तो उपन्यास को इस अलौकिकता से बचा सकते हैं। दशरथ का कैकेयी को वरदान मात्र एक वचन था। वचन कोई भी किसी को दे सकता है, उसमें कुछ भी असाधारण अथवा अलौकिक नहीं है। अहल्या 'शिला' नहीं, पति तथा समाज द्वारा परित्क्त होने के कारण 'शिलावत्' हो गई थी। यहां हम तुलसी की मान्यता को विस्मृत कर वाल्मीकीय अवधारणा को सहज ही स्वीकार कर सकते हैं। द्रौपदी की लज्जारक्षा का प्रसंग वस्तुत: भक्ति की प्रकृति को दर्शाता है। किन्तु आज का साधारण पाठक अपने अनुभव से बहुत दूर की घटना होने के कारण उसे स्वीकार नहीं कर पाता। अत: उसे मैंने दु:शासन तथा धृतराष्ट्र के मन में कृष्ण के भय का रूप दिया है। द्रौपदी जैसे ही कहती है कि " मैं कृष्ण की सखी हूं।" दु:शासन को पसीना आ जाता है। उसे चारों ओर कृष्ण का सुदर्शन चक्र चक्कर काटता हुआ दिखाई देने लगता है। दु:शासन अचेत होकर गिर पड़ता है। धृतराष्ट्र डर जाता है और तत्काल पांडवों और द्रौपदी को दासत्व से मुक्त कर देता है।

किरात रूपी शिव से अर्जुन के युद्ध को मैंने उनकी समाधि की स्थिति में दिखाया है। वह वस्तुत: एक प्रकार का आध्यात्मिक अनुभव है। यक्षप्रश्न को एक प्रकार की अर्धनिद्रा अथवा योगनिद्रा में देखा गया स्वप्न माना है। कृष्ण के विराट रूप को तर्क के आधार पर अधिक समझा जा सकता है। यदि हम इस सृष्टि का स्वरूप समझ लें, कैसे उसका प्रेक्षपण होता है और कैसे वह लय हो जाती है। मनुष्य का जीवन अपनी नियति के हाथों उसके बनाए हुए मार्ग पर चलता है और जो शरीर जन्म लेता है, उसका अंत भी होता है, तो हम कृष्ण के विराट रूप का चित्र अपनी आंखों से भी देख सकते हैं। श्रीकृष्ण का विराटरूप वस्तुत: सृष्टि की योजना का ही स्वरूप है।

अगस्त्य के चरित्र पर से रूपक तत्व हटा दिया जाए, तो वह भी अपने आप ही स्पष्ट और स्वाभाविक मानवीय चरित्र हो जाता है। वानर और भालुओं को मैंने आरंभ से ही वन में रहने वाली अविकसित जातियों के रूप में स्वीकार किया है, जो पशु धरातल पर जीवन यापन कर रही हैं। वानरों की पूंछें हैं किंतु किसी वानरी की पूंछ की चर्चा रामकथा में नहीं है। हनुमान तथा कुछ और वानर, अपने प्रयत्न से अपने क्षेत्र से बाहर जा कर भी आश्रमों से विद्या और ज्ञान प्राप्त कर आए हैं। श्रीराम हनुमान की वाणी सुनते ही, उनकी संस्कृत भाषा की प्रशंसा करते हैं।

यदि हम वानर जाति को सचमुच शाखामृगों के रूप में स्वीकार करते हैं तो हम यह भी स्वीकार कर सकते हैं कि वे वृक्ष की शाखाओं, वृक्षों के कोटरों में तथा पर्वतों की गुफाओं में रहा करते थे। किन्तु यदि हम इस पर विचार करें कि वानर (वा-नर) भी नरों तथा किन्नरो (किन् क्र नर) के समान किसी प्रकार के नर ही थे। तो हम उस गुफा की भी पड़ताल करनी पड़ेगी, जिस में वाली तथा मायावी का कई महीनों तक युद्ध हुआ था। वह कैसी गुफा थी, जिसके भीतर महीनों तक युद्ध होता रहा और किष्किंधा से किसी प्रकार की कोई सहायता न तो स्वत: आई और न सुग्रीव ने वैसा कोई प्रयत्न किया। सुग्रीव के चरित्र पर यदि हम थोड़ा संदेह कर भी लें कि वह नहीं चाहता था कि किष्किंधा की सेनाएं आकर वाली की रक्षा करें, तो भी किष्किंधा के सेनापति मंत्री, युवराज, तथा अन्य राजकर्मचारी क्या कर रहे थे ? इस सारी स्थिति का स्वाभाविक समाधान यही है कि वह गुफा साधारण प्राकृतिक गुफा नहीं थी। संभवत: वह किष्किंधा की प्राचीर का कोई ऐसा टूटा हुआ खंड होगा, जिसमें से होकर मायावी किष्किंधा से बाहर निकल गया। सुग्रीव ने वाली की अनुपस्थिति में मायावी की किष्किंधा में वापसी रोकने के लिए प्राचीर का जीर्णोद्धार करा दिया ; काव्यात्मक भाषा में उयसरी को गुफा के मुख कर पत्थर रख कर उसे बंद कर देना कहा गया।

हमारे अनेक इहलौकिक यथार्थवादी आलोचक शूर्पणखा के संदर्भ में राम और लक्ष्मण के व्यवहार की आलोचना करते हैं। उन्हें लगता है कि शूर्पणखा ने यदि राम के प्रति अपनी आसक्ति व्यक्त की तो कौन सा अपराध कर दिया। वे नारी और पुरुष के आकर्षण को नैसर्गिक और स्वाभाविक मानते हैं। वैसे भी प्रेम और प्रेमनिवेदन में कोई दोष नहीं है। किन्तु शूर्पणखा के व्यवहार को प्रेमनिवेदन मानने से पहले हमें यहां शूर्पणखा के व्यक्तित्व, स्थिति और उस के प्रेम की थोड़ी पड़ताल कर लेनी चाहिए।

नारी पुरुष के प्रेम में एकनिष्ठा भी होती है, परस्पर अनुराग भी और सामाजिक औचित्य भी। शूर्पणखा ने इन तीनों का उल्लंघन किया है। वह राम के रूप पर मुग्ध हो ही गई थी तो लक्ष्मण की ओर आकृष्ट होने अथवा लक्ष्मण की कामना करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। कंब रामायण में शूर्पणखा ने राम के प्रति अपनी आसक्ति प्रकट करते हुए, अपने भाइयों के वैभव का प्रलोभन भी दिया और उनकी शक्ति का भय भी दिखाया। राम को अपना नाम कामवल्ली बताया। किसी भी सुदर्शन पुरुष को देखकर उसकी कामना करना राक्षसों के अस्थायी पतित्व का दर्शन है, जहां स्त्री पुरुष स्वेच्छा से उन्मुक्त विहार करते हैं और यदि दूसरा पक्ष सहमत न हो तो बल प्रयोग करते हैं। शूर्पणखा उसी का उदाहरण प्रस्तुत कर रही थी। शूर्पणखा का पक्ष समस्त पौराणिक मूल्यों का विरोध करता है।

शूर्पणखा अवस्था में मंदोदरी की समवयस्क भी हो सकती है और उससे बड़ी भी। मंदोदरी की इतनी अवस्था है कि उसके पुत्रों के भी विवाह हो चुके हैं। यदि शूर्पणखा का पति विद्युतजिहव जीवित होता तो संभवत: वह भी पौत्रों और दौहित्रों वाली होती। इस दृष्टि से वह प्रौढ़ वय की महिला होनी चाहिए, जो अवस्था में लक्ष्मण से ही नहीं, राम से भी काफी बड़ी है। राम और लक्ष्मण के प्रति उस के श्रृंगारभाव का कोई औचित्य नहीं है। यह श्रृंगार रस है ही नहीं, यह तो अपने अनौचित्य के कारण श्रृंगाराभास के अंतर्गत आता है। सामान्य अवस्था में राम और लक्ष्मण के प्रति उसके मन में वात्सल्य जागता तो वह कहीं सहज और स्वाभाविक होता।

शूर्पणखा का सुंदर युवती नारी का रूप धारण करना और पुन: भयंकर रूप में प्रकट होना मुझे तनिक भी तर्कसंगत नहीं लगता। कुछ इसी प्रकार की चर्चा महाभारत में हिडिंबा को लेकर भी है। मेरी समझ में यह नहीं आता कि यदि उन्हें यह शक्ति

प्राप्त है कि वे जब भी चाहें अत्यंत सुंदर रूप धारण कर आकर्षक युवतियां बन सकती हैं, तो उन्हें कुरूप और भयंकर बनकर रहने की आवश्यकता ही थी। क्यों वे सुंदर, आकर्षक मनोहर रूपवती नारियों के रूप में नहीं रहती थीं। इसीलिए किन्हीं अलौकिक शक्तियों के माध्यम से स्वयं को थोड़े समय के लिए युवा और सुंदर बना लेने वाली बात स्वाभाविक नहीं लगती।

हम अपने समाज में निरंतर देखते हैं कि प्रौढ़ ही नहीं वृद्ध महिलाएं भी प्रसाधनों के माध्यम से स्वयं को यथासंभव युवा और आकर्षक बनाने का प्रयत्न करती ही रहती हैं। श्रृंगार प्रसाधनों तथा श्रृंगारकर्मियों की सहायता से शूर्पणखा ने स्वयं को कम उम्र की सुंदर युवती बनाने का प्रयत्न किया होगा। वह भोग संस्कृति में पली थी, राक्षसों के मध्य रही थी। उसने उदात्त चरित्र को न देखा था, न जाना था। इसीलिए राम और लक्ष्मण जैसे पुरुषों की कल्पना तक उसके मन में नहीं रही होगी, जिनका लक्ष्य धर्म है, भोग नहीं। यही कारण है कि राम के द्वारा मना किए जाने पर और लक्ष्मण से भी तिरस्कृत होकर उसे अपने प्रयत्न के अनौचित्य का आभास मात्र भी नहीं हुआ और उसने केवल यह माना कि दोनों पुरुष केवल सीता के कारण उसका तिरस्कार कर रहे थे। अत: उसकी अवमानना की दोषी सीता थी। यह सारा प्रसंग प्रेम के उदात्त, निर्मल, त्यागपूर्ण और स्वच्छ चित्रण का नहीं, काम, भोग, ईर्ष्या जैसी निस्तरीय भावनाओं के निरूपण का है।

शूर्पणखा के लिए रूप और यौवन का महत्व था। वह यह मान कर गई थी कि यदि वह राम की पत्नी से अधिक सुंदर युवती बन सकी तो राम स्वत: ही उसकी ओर आकृष्ट हो जाएंगे। इसीलिए आत्मपरिचय देते हुए, जहां उसने राम के रूप की प्रशंसा की, वहां उसने स्वयं को भी संसार की अद्वितीय सुंदरी बताया। उसके लिए निष्ठा अथवा चरित्र का कोई महत्व नहीं था। लक्ष्मण से संघर्ष में शूर्पणखा का श्रृंगार धुल गया होगा। केशविन्यास बिखर गया होगा, लेप खुरचा गया होगा तथा चेहरे पर मन के विकृत भाव आ विराजे होंगे। ऐसी स्थिति में कोई सुंदरी नारी भी राक्षसी ही दिखाई देने लगेगी। शूर्पणखा का तो वह छद्म वेश ही था।

विभिन्न पौराणिक कथाओं में शिव को अद्‌भुत शस्त्रों का निर्माता स्वीकार किया गया है। जब कोई योद्धा किसी असाधारण शस्त्र को प्राप्त करना चाहता है, वह शिव की आराधना करता है और उनसे कोई न कोई अद्‌भुत शस्त्र प्राप्त कर लेता है। पुराणों में शिव, सामान्य राजाओं, राज्यों तथा व्यावसायिक शस्त्रनिर्माताओं से कहीं उत्कृष्ट कोटि के शस्त्रनिर्माता चित्रित हुए हैं। जनक के पास भी शिव का धनुष रखा हुआ है, जो किसी योद्धा से परिचालित नहीं होता। तुलसीदास ने इस धनुष को सामान्य धनुष के रूप में ही अंगीकार किया है। वह इतना भारी है कि दस सहस्र राजा उसे एक साथ उठाने का प्रयत्न करते हैं तो वह उन से हिलाए हिलता भी नहीं है । राम उस धनुष को अकेले ही सहज रूप से उठा लेते हैं। यह गुरुत्वाकर्षण के नियम का उल्लंघन है। त्रागुणात्मक प्रकृति के स्वामी के रूप में राम कार्य-कारण के नियम के बाहर भी कर्म कर सकते हैं। किन्तु मनुष्य के रूप में यह संभव नहीं लगता।

वाल्मीकि उस धनुष को लोहे की बहुत बड़ी पेटी में रखा हुआ बताते हैं, जिसे धकेल कर लाने में सैंकड़ों मनुष्य तथा पशु पसीना पसीना हो गए हैं। मैंने इस धनुष पर समकालीनता का कुछ आरोपण कर, उस की टैंक के समान किसी यंत्र के रूप में कल्पना की है। मैं यह सिद्ध करना नहीं चाहता कि रामायण काल में भी टैंक थे - यह मेरी दृष्टि नहीं है - मैंने उस धनुष की कल्पना एक यंत्र के रूप में की है, जिसके परिचालन के लिए युक्ति, अभ्यास, युद्ध तथा बल - सबकी आवश्यकता होती है। इसके कुछ कारण हैं।

महाभारत के युद्ध में अश्वत्थामा एक बार नारायणास्त्र का प्रयोग करता है और दूसरी बार उसी अस्त्र का प्रयोग वह नहीं कर सकता। एक व्यक्ति जो काम एक बार कर सकता है, उसे वह बार बार भी कर सकता है। यह भी पूछा जा सकता है कि यदि अश्वत्थामा के पास नारायणास्त्र जैसा कोई अस्त्र था तो उसने उसका प्रयोग पहले ही क्यों नहीं किया ? हम देखते हैं कि पौराणिक आख्यानों में जो अस्त्र कहीं दिखाई नहीं देता, जिसकी कहीं कोई चर्चा ही नहीं है, वह अकस्मात् ही प्रकट हो जाता है।

पुराणों में चर्चित शस्त्रों को हम स्थूलत: तीन वर्गों में बांट सकते हैं - लौकिक अस्त्र, दिव्यास्त्र और देवास्त्र। लौकिक शस्त्रों के विषय में कोई कठिनाई नहीं है। दिव्यास्त्र वे हैं, जिन में साधरण शारीरिक बल का ही प्रयोग नहीं है, कुछ यंत्र का भी कौशल है।

तीसरे हैं, देवास्त्र, जो देवताओं से प्रप्त होते हैं। देवास्त्र ही कुछ प्रश्न उठाते हैं ; क्योंकि उनके विषय में सब कुछ स्पष्ट नहीं है। नारायणास्त्र को एक बार अश्वत्थामा ने चलाया और दूसरी बार अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। यदि अश्वत्थामा नारायणास्त्र को दूसरी बार नहीं चला सकता था तो वह उसे दुर्योधन को दे तो सकता था। दुर्योधन उसे किसी और से चलवा लेता। या फिर दुर्योधन ने ही उसे आदेश क्यों नहीं दिया कि वह नारायणास्त्र दुर्योधन को दे दे। दुर्योधन उसे कर्ण को सौंप देता। कर्ण अपने आप उसको चला लेता। उन लोगों को नारायणास्त्र की आवश्यकता थी, अश्वत्थामा का उन्हें क्या करना था। पर उनमें से किसी ने भी ऐसा कोई आग्रह नहीं किया।

अश्वत्थामा उसे पुन: क्यों नहीं चला सकता था ? प्रत्येक दृश्य वस्तु का कोई एक अदृश्य ऊर्जास्रोत होता है। मन की ऊर्जा शरीर को चलाती है। शरीर की ऊर्जा धनुष को चलाती है और धनुष की ऊर्जा बाण को चलाती है। वास्तविक खेल तो इस ऊर्जा का ही है। ऊर्जा के उपकरण दिखाई देते हैं, ऊर्जा दिखाई नहीं देती। अग्नि दिखाई देती है, किंतु ताप दिखाई नहीं देता। हिलती और उड़ती हुई चीजें दिखाई देती हैं किंतु न पवन दिखाई देता है, न उसका वेग। धरती दिखाई देती है किंतु गुरुत्वाकर्षण नहीं। पदार्थ के रूप में चुंबक दिखाई देता है, किंतु चुंबकीय शक्ति नहीं। प्रत्येक पिंड किसी न किसी ऊर्जा से ही चल रहा है। ऊर्जा के स्रोत जड़ भी हैं और चेतन भी। इनमें सब से महत्वपूर्ण ऊर्जा का वह चेतन स्रोत ही है, जो मनुष्य की आत्मा है। यदि हम अपनी आत्मा की शक्ति का प्रयोग सीधे स्थूल पदार्थों पर करते हैं और उनका परिचालन करना सीख जाते हैं, तो हम देवास्त्र चलाते हैं।

जब हम अपनी आत्मिक ऊर्जा को विद्युत तरंगों में बदल लेते हैं और उसके माध्यम से संदेश भेजते हैं, तो प्रकृति का प्रत्येक कण उन आदेशों का पालन करता है। जब हमारी वही ऊर्जा अपनी विद्युत तरंगें शरीर से बाहर पहुंचाने लगती है, तो

दिव्यास्त्रों जैसे अनेक चमत्कार होने लगते हैं। आत्मिक ऊर्जा, आध्यात्मिक साधना का क्षेत्र है।

आध्यात्मिक साधना क्या है ? अपने शरीर के भीतर की सुप्त ऊर्जा को जगाना और उसका प्रबंधन ही तो है। उसका उपयोग किसी भी क्षेत्र में किया जा सकता है। अब इस साधना को युद्धक्षेत्र में ले जाएं। हमारा ध्यान इस ओर जाना चाहिए कि सारे दिव्यास्त्र और देवस्त्र ऋषियों और देवताओं के पास ही क्यों होते हैं। हमारे योद्धा अपनी साधना से अथवा ऋषि या देवता की सेवा से ही उन्हें प्राप्त करते हैं। साधना तो रावण ने भी बहुत की थी। वह शिव का भक्त भी था। उससे अजगव क्यों परिचालित नहीं हुआ ?... राक्षसी आचरण से आध्यात्मिक साधना नहीं होती।

कोई पूछ सकता है कि बातें तो हम करें नारायणास्त्र जैसे देवस्त्रों की ; और युद्ध हो रहा हो एक मैदान में आमने सामने खड़े होकर। चर्चा हो एक व्यक्ति की इच्छा मात्र से सहस्त्रों बाण चलने की अथवा अग्नि वर्षा की ; और समाचार आ रहे हों कि समरभूमि में लोग हाथ में शस्त्र लेकर दो हाथ की दूरी से एक दूसरे पर प्रहार कर रहे हैं। यह कैसे संभव है ?

ऐसे युद्ध को देखे बिना उसको समझना सचमुच कठिन है। समरभूमि हमारी वाटिका के समान कोई छोटा सा क्षेत्र नहीं है। वह योजनों में फैला हुआ विशाल भूखंड है। उसके एक छोर से दूसरे छोर तक जाने के लिए पूरा दिन लग जाता है। कई बार किसी योद्धा का पूरा समाचार भी अन्य योद्धाओं को नहीं मिल पाता कि वह कहां है और किससे युद्ध कर रहा है। संशप्तक धनंजय को समरभूमि के किसी एकांत में ले जाते हैं और दूसरी ओर यह प्रतीक्षा ही होती रहती है कि धनंजय आएंगे। फिर सामान्य सैनिक तो खड्ग, भल्ल, गदा, तोमर इत्यादि लौकिक शस्त्रों से ही लड़ रहा है। कुछ महारथियों के पास कुछ दिव्यास्त्र भी हैं। ... किंतु देवास्त्रों वाले योद्धा तो गिने चुने ही हैं।... तो फिर धनंजय एक ही दिन में अपने देवास्त्रों से अपने शत्रुओं के समाप्त क्यों नहीं कर देते ? हमारा ध्यान इस ओर जाना चाहिए कि धर्मराज और स्वयं गोविन्द को धनंजय से शिकायत है कि वे मन लगा कर युद्ध नहीं कर रहे।... वस्तुतः युद्ध कई स्तरों पर होता है। राम रावण युद्ध में भी वानर तो पत्थरों और लौकिक शस्त्रों से ही लड़ रहे थे ; किंतु दोनों पक्षों के नेताओं के पास दिव्यास्त्र और देवास्त्र थे। ऐसे युद्ध में धनंजय हों या द्रोण - उन दोनों के ही मन में, देवास्त्रों से साधारण लौकिक अस्त्रों से लड़ने वाले सैनिकों का नाश करने के प्रति संकोच दिखाई देता है। किसी भी योद्धा के मन में बराबरी का युद्ध करने की इच्छा होती है। हां ! भीष्म पितामह ने यह संकोच कुछ कम दिखाया है। पांचाल सैनिकों के प्रति वे अत्यंत निर्मम रहे हैं।

यदि इन काव्य रूढ़ियों से हम बाहर निकल आएं, तो सारी स्थिति बदल जाती है। एक सिर वाले माता पिता की संतान के दस सिर नहीं हो सकते। और दस सिर के पिता की संतान के भी दस सिर होने चाहिएं। यह जीव विज्ञान का सीधा सादा नियम है। न रावण के पिता के दस सिर थे, न रावण के भाइयों के और न उसके पुत्रों के। ऐसे में अकेला रावण ही कैसे दस सिरों वाला हो सकता है। संभव है कि रावण की मानसिक क्षमता को प्रकट करने के लिए प्रतीकात्मक रूप में किसी ने उसके दस सिरों की कल्पना की हो। किसी चित्रकार ने उसी को, मूर्तिमान करते हुए, वैसा चित्र बना दिया हो, जो आगे प्रचलित हो गया हो। यह भी संभव है कि दशानन अथवा दशग्रीव, उसका नाम रहा हो, और उस नाम को पढ़ कर किसी ने उसके दस सिरों की कल्पना की हो। मेरा तर्क उसे एक मस्तक वाला सामान्य मनुष्य ही मानता है।

मेरी तर्क प्रणाली कहती है कि या तो किसी को असाधारण मानव न माना जाए, अवतार या भगवान् न माना जाए ; और यदि मान लिया जाए तो स्वयं को उससे अधिक बुद्धिमान मानकर उसके चरित्र का न्यायाधीश न बना जाए। हमें यह मान कर चलना चाहिए कि साधारण बुद्धि के व्यक्ति के लिए, असाधारण चरित्रों में कुछ बातें ऐसी होती हैं, जो उसकी समझ में नहीं आतीं। ऐसी स्थिति में उस चरित्र का विरोध करने से पहले, उसे समझने का प्रयत्न किया जाए। मुझे ऐसे प्रसंगों में बार बार स्वामी विवेकानन्द का स्मरण हो आता है। पवहारी बाबा ने जब यज्ञ करते हुए, अंतिम आहूति के रूप में अपने शरीर की आहूति दे दी थी तो लोगों ने स्वामी जी से पूछा था कि क्या बाबा ने यह उचित किया ? स्वामी जी का उत्तर था कि, मैं कौन होता हूं, यह निर्णय करने वाला कि बाबा ने जो कुछ किया, वह उचित था या नहीं। वे इतने बड़े आदमी थे कि हमें यह देखना होगा कि उन्होंने ऐसा क्यों किया। धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा द्यूत खेलना और भगवान् राम द्वारा सीता की अग्नि परीक्षा कुछ ऐसे ही प्रसंग हैं, जिन्हें गंभीरता से देखा जाए, तो वे अपना मर्म स्वयं ही बता देते हैं।

पच्चीसों वर्ष पौराणिक कृतियों के मध्य रह कर मेरा विचार बना है कि पौराणिक आख्यानों पर कलम उठाने से पहले, अपनी आधुनिक बौद्धिकता को कुछ शिथिल कर उन चरित्रों और उनके संदेश की वास्तविकता को समझने का प्रयत्न करना चाहिए। न बौने हाथों से आकाश छूने का प्रयत्न करना चाहिए और न गंदे हाथों से चरणामृत लेना चाहिए। उन चरित्रों उन घटनाओं और उनके चिंतन के यथार्थ को समझ कर उनका यथार्थ चित्रण करना चाहिए, यथार्थवादी चित्रण नहीं। पौराणिक मूल्य व्यवस्था मानवता के हित के लिए अमूल्य निधि है। उसे अपनी कलम से ध्वस्त करना अक्षम्य अपराध होगा।

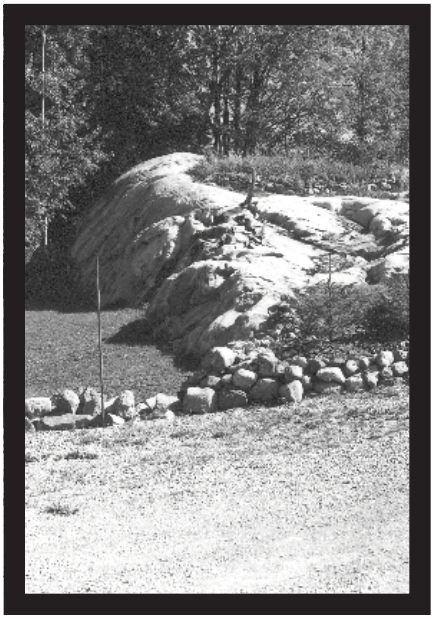

पूर्णिमा वर्मन को जयजयवंती सम्मान

हिन्दी अभी भी बहुत पीछे है , जैसे यदि विकीपीडिया में सभी रोज़ कुछ ना कुछ रचनात्मक योगदान करें तो हम हिन्दी को बेहतरी की ओर तेज़ी से ले जा सकते हैं। यह बात कही है, इंट-रनेट पर अभिव्यक्ति और अनुभूति पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी के प्रचार - प्रसार और संवर्धन में निरंतर संलग्न बहुमुखी प्रतिभा की धनी , हिन्दी हितैषी माननीया पूर्णिमा वर्मन ने।

राजधानी नई दिल्ली के इंडिया हैबीटेट सेंटर में जयजयवंती सम्मान से सम्मानित किये जाने के बाद उन्होंने अपने छोटे से वक्तव्य में सभागार में मौजूद सभी हिन्दी प्रेमियों को भाव विह्वल कर दिया। कार्यक्रम का संचालन प्रख्यात कवि डॉ. अशोक चक्रधर और प्रवासी संसार पत्रिका के संपादक श्री राकेश पांडेय ने किया। कार्यक्रम के प्रारम्भ में मुख्य अतिथि काँग्रेस के युवा सांसद श्री नवीन जिंदल , वरिष्ठ सांसद श्री सत्यव्रत शास्त्री, पूर्णिमा वर्मन, श्री अशोक चक्रधर, श्रीमती बागेश्वरी चक्रधर ने दीप प्रज्वलित किया। इसके बाद जयजयवंती की संगीत छात्रों ने समूह गान प्रस्तुत किया।

पूर्णिमा वर्मन की अंतर्जाल पर लोकपियता का आलम यह है कि सभागार दर्शकों से खचाखच भरा हुआ था। जिनमें सर्वश्री पद्मश्री वीरेन्द्र प्रभाकर , अरविंद कुमार, राहुल देव, वी के मल्होत्रा, प्रेम जनमेजय, बालेन्दु दाधीच, जैनेन्द्र कर्दम, मनोहर पुरी, विजेन्द्र विज, वर्तिका नंदा, डॉ. जगदीश व्योम, राजीव कुमार, आशीष भटनागर, अविनाश वाचस्पति, राजीव तनेजा, सुशील कुमार , पुष्कर पुष्प , उमाशंकर मिश्र, पायल शर्मा जैसे कई नाम थे, जिनके हृदय में हिन्दी धड़कती है।

माननीया पूर्णिमा वर्मन को यदि अंतर्जाल जगत में हिन्दी का पुरोधा कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। पूर्णिमा जी की अंतर्जाल पत्रिकाओं अभिव्यक्ति और अनुभूति की खासियत है कि इसका संपादन एक देश में होता है , तो डिज़ायनिंग का कार्य दूसरे देश में और टाइपिंग का कार्य तीसरे देश में। इसके रचनात्मक सहयोगी और पाठक पूरे विश्व भर में फैले हैं। विकीपिडिया से जुड़ने के लिए पूर्णिमा वर्मन ने हर हिंदी भाषी से खुला आह्वान किया है और वे हिंदी हित संधान के लिए सदैव तत्पर रहती हैं। उनके सम्पर्क करने के लिए अभिव्यक्ति और अनुभूति के लिए लिंक नीचे दिए गए हैं :

http://www.anubhuti-hindi.org
htt://www.abhivyakti-hindi.org

साभार हिंदी मीडिया

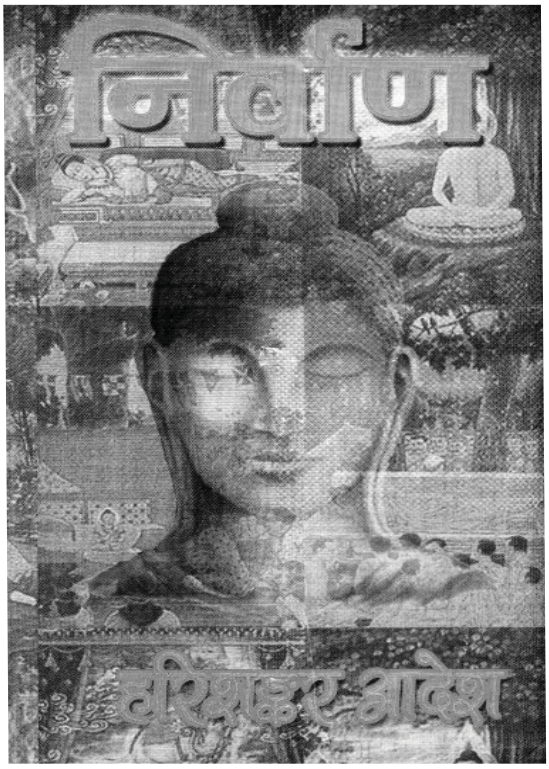

महाकवि हरि शँकर आदेश की महान रचनाओं में से एक अद्वितीय महाकव्य 'निर्वाण' जिसे पढ़कर हर पाठक को ज्ञान का नया मुक्तिबोध प्राप्त होगा । 'हिन्दी चेतना' के लिए निर्वाण वर्ष २००८ की एक अनुपम उपलब्धि है ।

संपादक हिन्दी चेतना

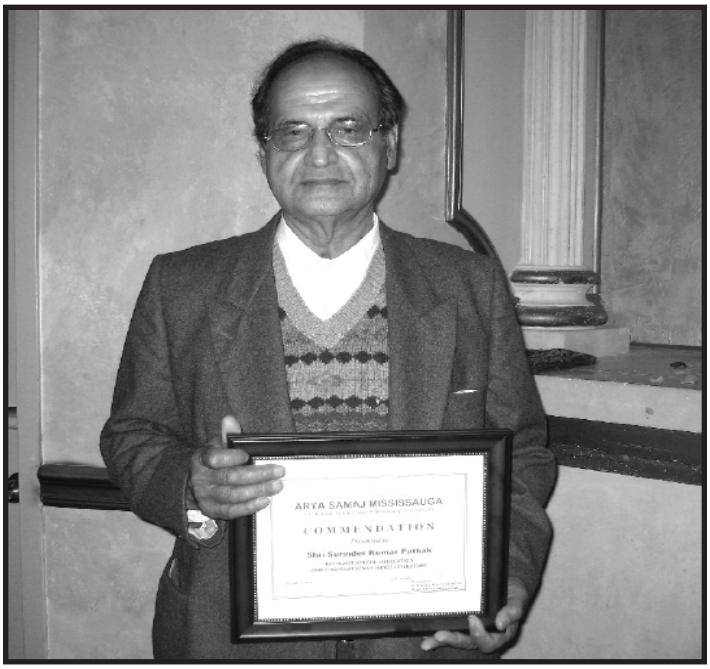

'हिन्दी चेतना' प्रेमी, हिन्दी के समर्थक , हास्य कवि श्री सुरेन्द्र पाठक जी को 'मिसिसागा' आर्यसमाज की ओर से ३ अक्टूबर २००८ को हिन्दी की सेवाओं के लिए सम्मनित किया गया।

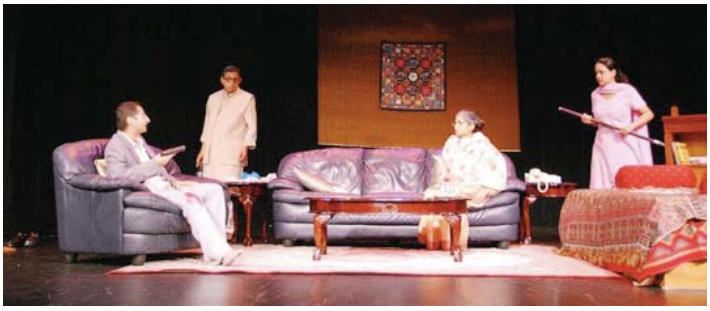

२१ जून और २१ जून, २००८ को डॉ. नरेन्द्र कोहली के नाटक "गारे की दीवार" का सियैटल की सांस्कृतिक संस्था "प्रतिध्वनि" ने तीन बार मंचन किया। यह संस्था आगे भी डॉ. नरेन्द्र कोहली के तीन नाटकों का, २००५ से २००६ तक मंचन कर चुकी है। अगस्त्य कोहली जो कि इस संस्था के नाटक विभाग का नेतृत्व कर रहे हैं; के प्रयत्नों से "गारे की दीवार" की प्रस्तुति सम्भव हुई। 'प्रतिध्वनि' अब तक पाँच नाटकों का सफल मंचन कर चुकी है।

डॉ. नरेन्द्र कोहली के सभी नाटक समाज और जीवन से जुड़ी उन मौलिक समस्याओं और स्थितियों से संघर्ष करते नज़र आते हैं जो समकालीन मनुष्य को परेशान कर रही हैं। इसमें तीखा व्यंग्य भी होता है जो पाठक को व्यापक सत्य के सामने खड़ा देता है।

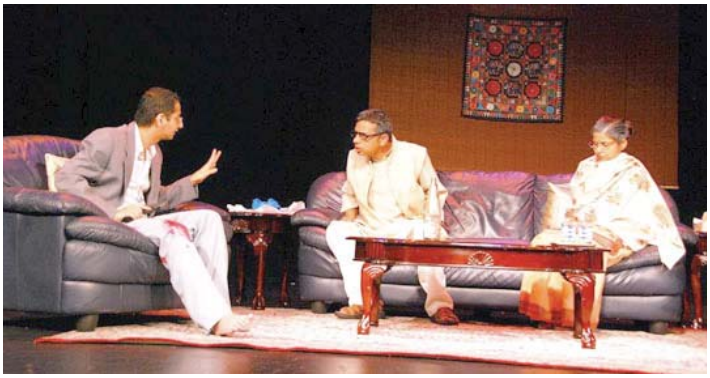

इस नाटक पर हुई प्रतिक्रियाँ आप निम्नलिखि लिंक पर पढ़ सकते हैं –

http://www.pratidhwani.org/gkd/Reviews%20and%20Reactions.html

अगर आप इस नाटक के कुछ दृश्य देखना चाहें तो निम्नलिखित लिंक पर क्लिक कीजिए -

http://www.youtube.com/watch?v=rlxiWfb_OQc

हिन्दी समाचार

टोरंटो में १४ सितम्बर २००८ को भारतीय दूतावास में एक भव्य कवि सम्मेलन आयोजित हुआ। जिसकी अध्यक्षता डॉ. भारतेन्दु श्रीवास्तव ने की और इसका संचालन डॉ. देवेन्द्र मिश्रा ने किया। कार्यक्रम अत्यन्त रोचक और आनन्ददायक रहा। सभी कवियों और कवयित्रियों ने राष्ट्र भाषा हिन्दी के विषय में अपने ओजपूर्ण भावों से मंच की शोभा बढ़ाई।

(हिन्दी चेतना)

प्रेम करना है तो कर तू त्याग .....

समृद्ध साहित्य का संवाहक

साहित्य जनमंच

~~09213111076~~
09990742488

डी-9

कार्यालय : डी-~~69~~, नन्दग्राम, गाजियाबाद 201003

पत्रांक सा.ज.मं./108/08. दिनाँक 28 जुलाई 2008

ओ० पी० शास्त्री 'मिलन'
संपादक

परम श्रद्धेय त्रिपाठी जी

सादर वन्दन।

आप द्वारा प्रेषित पत्रिका 'हिन्दी चेतना' का 39 वाँ अंक हस्तगत हुआ। सांगोपांग पत्रिका को पढ़ने के पश्चात आपके संपादन क्षमता की मुक्त हृदि प्रशंसा करता हूँ। अभिव्यक्ति की कड़ी में आपका हिन्दी साहित्य के प्रति प्रेम व डेडिकेटेड सेवा को देखते हुए हार्दिक अभिभूत हूँ कि मातृ से दूर रहकर भी मातृभाषा के प्रति निष्ठा व कर्तव्य परायणता से आपने भारती का मस्तक ऊँचा किया है। साथ ही आपकी दस्तावेजी पत्रिका के माध्यम से हिन्दी के प्रति अनन्य तप का सुयश विश्व में सुरभित हो रहा है।

पत्रिका में विविध विधाओं की रचनायें प्रकाशित हैं किसकी प्रशंसा करूँ "को बड़ छोट कहत अपराधू" की तुला पर रखता हूँ। उक्त पत्रिका में प्रकाशनार्थ रचनायें प्रेषित कर रहा हूँ यथास्थान देकर कृतार्थ करेंगे। साहित्य जनमंच का अंक 9 भी प्रेषित है कृपया प्रतिक्रियास्वरूप आशीर्वाद देने की कृपा करेंगे।

सादर,

ओम प्रकाश शास्त्री

विशेष :- इस संपर्क स्थापना हेतु डा० प्रदीप जी साधुवाद के पात्र हैं।

■ पाती

1. प्रिय संपादक जी ,

'हिन्दी चेतना' का जुलाई अंक कम्प्यूटर पर पढ़कर बहुत आनन्द मिला। इसके लिए आपको मेरा हार्दिक धन्यवाद!
यह अँक वाकई काबिले तारीफ है। देवेन्द्र सिंह जी का डॉ.सुधा ओम ढींगरा द्वारा इन्टरव्यू अत्यन्त ही प्रशंसनीय है। अमेरिका में हिन्दी को द्वितीय भाषा का स्थान बनाने का प्रयास बहुत अच्छा है। इसके अतिरिक्त सुधा जी की दो कविताएं "शहीद" और "माँ की फरियाद" बहुत ही उच्च कोटि की हैं।
डॉ.सचदेव की "मोर अच्छा नाचा" तथा
डॉ. इला प्रसाद की छोटी - छोटी कवितायें कवि के अन्तर की पीड़ा को दर्शाती हैं। प्राण शर्मा की "माँ बोली"- हर आदमी को अपने अन्दर झाँकने को प्रेरित करती है। हम लोग अपनी माँ बोली को भूलते जा रहे हैं। आशा भाटिया की - बेटा समय लौट कर नहीं आता - छोटी पर बहुत अच्छी है। किरन सिंह का "चेहरा पर चेहरा" आज का सच दर्शाता है। अनुराधा चन्दर का "सच" प्रशंसनीय है। मधुप पाँण्डेय का "व्यंग्य" काफी तीखा है और सही जगह पर चोट करता है। बाल कथा- बदलाव - बच्चों के लिए ही नहीं बड़ों के लिए भी प्रेरणा का स्त्रोत है।
डॉ. निलाक्षी फुकन बधाई की पात्र हैं। अभिनव शुक्ला की "अभिमन्यु विजयी होगा" पत्रिका के म्यार को चार चाँद लगा देती है।

अनिल शर्मा, बैंगकाक (थाइलैंड)

संपादक जी,
आपकी पत्रिका के जुलाई अंक को देखा, बहुत खुशी हुई यह देखकर कि सुदूर विदेश में रहते हुये इतने अच्छे स्तर की पत्रिका आप प्रकाशित कर रहे हैं, पिछले 10 वर्ष से । यह कोई मामूली बात नहीं है। आप बधाई के पात्र हैं।

इस अंक में तीन ई- कविता के सदस्यों (कवि कुलवंत सिंह, राहुल जी,तथा,मैं स्वयं) की रचनाएँ देख कर खुशी हुई । आप स्वयं इस मंच से जुड़ी हैं, हिन्दी चेतना के लिए वरदान है।

पत्रिका में विज्ञापन भी पर्याप्त हैं। यह पत्रिका की लोकप्रियता तथा संयोजक की प्रयत्नशीलता को इंगित करता है। पुनः बधाई ।

ख़लिश (भारत)

आदरणीय संपादक जी, सादर नमन।

आपके द्वारा प्रेषित हिन्दी चेतना का यह अंक देखने का अवसर मिला। जानकर प्रसन्नता हुई कि कनाडा से यह संस्था हिंदी के लिए एक दशक से कार्यरत है। इस के लिए चेतना टीम बधाई की पात्र है। सम्पादकीय में ठीक ही कहा गया है कि एकता में ही सफलता है। सभी संस्थाओं को उस बगिया की तरह होना चाहिये जिसमें अनेक रंग - बिरंगे फूल खिले हैं जो विभिन्न रूप- रंग -गंध - मकरंद के साथ चमन की शोभा बढ़ाते हैं। आशा है आप लोग अपने ध्येय को एकजुटता से सफलता की मंजिल तक ले जाने में सफलता प्राप्त करेंगे। शुभकामनाएं।

चंद्र मौलेश्वर प्रसाद , सिकंदराबाद (आंध्र प्रदेश, भारत)

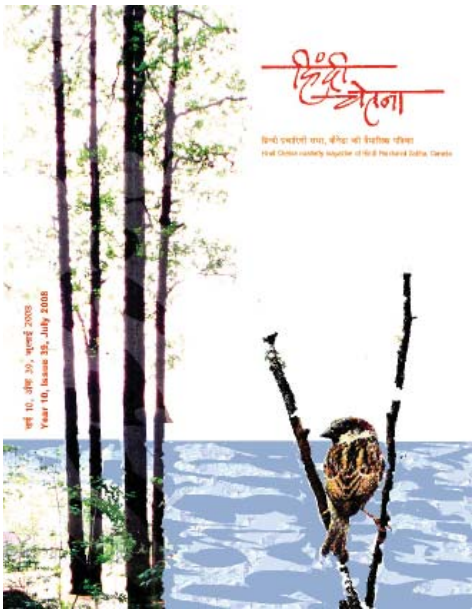

पिछले अंक के मुख पृष्ठ की प्रशंसा में :

सोच - विचार में डूबा पक्षी
आ लिया सहारा पेड़ की डाली का।
आंखों से अश्रु बहते
कहता है इस दुनियाँ में मेरा कोई सहारा नहीं,
भगवन् अब केवल तुम्हारा ही सहारा है।
वास्ती ने मेरे दुख को जाना,
लिखी मेरी दर्द भरी कहानी है।
मैं जीवन भर उसका ऋणि रहूंगा
भगवान को जिसने बताई कहानी है।

वास्ती राम घई (कैनेडा)

Hindi Pracharni Sabha

Membership Form

Annual Subscription:	**$25.00 Canadian**
Life Membership:	**$200.00 Canadian**
Donation:	**$ _____**
Method of Payment:	**Cash, cheques and drafts payable to "Prachani Sabha"**

Your Name:_____

Address: _____

_____

Telephone: Home: _____

Business: _____

e-mail: _____

_____

Contact in Canada:

Hindi Pracharni Sabha
6 Larksmere Court
Markham, Ontario L3R 3RI
Canada

e-mail: hindichetna@yahoo.ca

Contact in USA:

Dr. Sudha Om Dingra
101 Guymon Court
Morrisville, North Carolina
NC27560, USA

e-mail: ceddlt@yahoo.com

CARPET PLUS

SAVE UP TO 70%
LUXURIOUS CARPETS
ORIENTAL RUGS

Commercial &
Residential
Installations

F •***Installation***
R •***Underpad***
E •***Delivery***
E •***Shop at Home***

(416) 661-4444
(416) 663-2222

Vinyl Tiles

Broadloom

180 Winges Rd.,
Unit 17-19
Woodbridge, Ontario
L4L 6C6

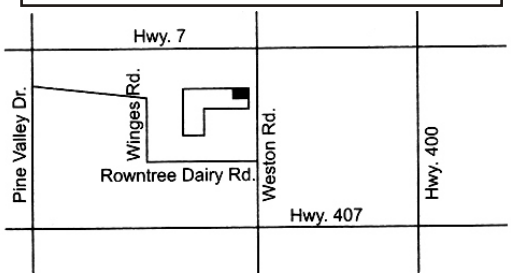

Finest Source of :

International Flag Pins

Campaign Buttons

Friendship Pins

Embroided Crests (Patches) of All Countries

International & Provincial Flags of all sizes, Souvenirs

Mini Banners & Keychains of all countries available

Custom work available for Pins, Buttons, Crests and Flags
At Factory Direct Prices Free Set up & Shipping

We carry more than 500 Titles each of Pins, Flags & Crests in stock

Pinsnflags.com Inc., 395 Spadina Ave., Toronto, Ont., M5T 2G6

Tel: 416-596-1574 Fax: 416-596-2248
Toll Free: 1-877-322-4771 E-Mail: veena@pinsnflags.com
www.pinsnflags.com

मेरे मित्रो! हिन्दी बोलो, अपने बच्चों को हिन्दी सिखाओ! अपनी भाषा और संस्कृति को बचाओ!1